श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

भाग १३ अंक ८।

जैनहितैषी।

अगस्त १९१७।

विषय सूची।

१ पुस्तकालय और इतिहास ३९५
२ अथूंणाका शिलालेख-ले०, बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार ३३[illegible]
३ गोम्मटस्वामीकी सम्पत्तिका गिरवी रक्खाजाना ,, ३३७
४ कुछ इधर उधरकी-ले०, श्रीगड़बड़ानन्दशास्त्री ... ३३९
५ रानीसारन्धा (गल्प)-ले०, श्रीयुत प्रेमचन्दजी ... ३४१
६ पुस्तक-परिचय ३५३
७ आदिपुराणका अवलोकन-ले०, श्री.बाबूसूरजभानजी वकील ३६२
८ विविधप्रसङ्ग ३६६

सूचना।

जैनहितैषीका प्रत्येक लेख पढ़ने और विचार करनेके योग्य होता है । इसमें उन्हीं लेखोंको स्थान मिलता है, जिनमें कोई नूतनता, विशेषता और नया प्रकाश होता है । पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे इसके प्रत्येक लेखसे लाभ उठावें ।

—सम्पादक।

संपादक—नाथूराम प्रेमी।

मुंबईवैभव प्रेस·

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रार्थनायें ।

१. जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है। इसमें जो समय और शक्तिका व्यय किया जाता है वह केवल अच्छे विचारोंके प्रचारके लिए । अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए ।

२. जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको जितने मित्रोंको वे पढ़कर सुना सकें अवश्य सुना दिया करें ।

३. यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेष भाव न धारण करनेके लिए सविनय निवेदन है ।

४. लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है । —सम्पादक ।

भारतविख्यात ! हजारों प्रशंसापत्र प्राप्त !

अस्सी प्रकारके बात रोगोंकी एकमात्र औषधि

महानारायण तैल ।

हमारा महानारायण तैल सब प्रकारकी वायुकी पीड़ा, पक्षाघात, (लकवा, फालिज) गठिया सुन्नवात, कंपवात, हाथ पांव आदि अंगोंका जकड़ जाना, कमर और पीठकी भयानक पीड़ा, पुरानीसे पुरानी सूजन, चोट, हड्डी या रगका दबजाना, पिचजाना या टेढ़ी तिरछी होजाना और सब प्रकारकी अंगोंकी दुर्बलता आदिमें बहुत बार उपयोगी साबित होचुका है ।

मूल्य २० तोलेकी शीशीका दो रुपया । डा० म० ॥) आना ।

❀ वैद्य ❀

सर्वोपयोगी मासिक पत्र ।

यह पत्र प्रतिमास प्रत्येक घरमें उपस्थित होकर एक वैद्य या डाक्टरका काम करता है। इसमें स्वास्थ्य-रक्षाके सुलभ उपाय, आरोग्य शास्त्रके नियम, प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकके सिद्धान्त, भारतीय वनौषधियोंका अन्वेषण, स्त्री और बालकोंके कठिन रोगोंका इलाज आदि अच्छे २ लेख प्रकाशित होते हैं । इसकी वार्षिक फीस केवल १) रु० मात्र है ।

नमूना मुफ्त **मंगाकर** देखिये ।

पता—वैद्य शङ्करलाल हरिशङ्कर

आयुर्वेदोद्धारक—औषधालय, मुरादाबाद ।

आढ़तका काम ।

बंबईसे हरकिस्मके माल मँगानेका सुभीता ।

हमारे यहांसे बंबईका हरकिस्मका माल किफायतके साथ भेजा जाता है। तांबें व पीतलकी चद्दरें, सब तरहकी मशीनें, हारमोनियम, ग्रामोफोन, टोपी, बनियान, मोजे, छत्री, जर्मन-सिलवर और अलूमिनियमके बर्तन, सब तरहका साबुन, हरप्रकारके इत्र व सुगन्धी तेल, छोटी बड़ी घड़ियाँ, कटलरी का सब प्रकारका सामान, पेन्सिल कागज, स्याही, हेण्डल, कोरी कापी स्लेट, स्याहीसोख, ड्राइंगका सामान, हरप्रकारकी देशी और विलायती दवाइयाँ, काँचकी छोटी बड़ी शीशियोंकी पेटियाँ, हरप्रकारका देशी विलायती रेशमी कपड़ा, सुपारी, इलायची, मेवा, कपूर आदि सब तरहका किराना, बंबईकी और बाहरकी हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी पुस्तकें, जैन पुस्तकें, अगरबत्ती, दशांगधूप, केशर, चंदन आदि मंदिरोपयोगी चीजें, तरह तरहकी छोटी बड़ी रंगीन तसबीरें, अपने नामकी अथवा अपनी दूकानके नामकी मुहरें कार्ड, चिट्ठी, नोटपेपर, मुहूर्त्तकी चिट्ठीयाँ (कंकुपत्रिका) आदि, हरकिस्मका माल होशयारीके साथ वी. पी. से रवाना किया जाता है। एक बार व्यवहार करके देखिये । आपको किसी तरहका धोका न होगा ।

हमारा सुरमा और नमकसुलेमानी

अवश्य मँगाइए । बहुत बढ़िया है ।

पता—**पूरणचंद नन्हेंलाल जैन ।**

c/o जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग,

पो० गिरगांव, बम्बई ।

Printed by Chintaman Sakharam Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

Published by Nathuram Premi, Proprietor, Jain-Granth-Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Bombay.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

तेरहवाँ भाग । अंक ८

जैनहितैषी

अगस्त, १९१७. श्रावण, २४४३.

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी हितैषी ॥

पुस्तकालय और इतिहास ।

जैनसमाजका ध्यान अब भी पुस्तकालयोंकी ओर नहीं है । जान पड़ता है, वह इसके महत्त्वको ही अभीतक नहीं समझा है । यही कारण है, जो न तो धनी लोगोंका धन ही इस ओर लगता है और न विद्वानोंकी विद्याका ही इस ओर आकर्षण होता है । आठ दस वर्ष पहले स्वर्गीय बाबू देवकुमारजीका ध्यान इस ओर गया था और उन्होंने एक बड़ा भारी पुस्तकालय खोलनेकी इच्छा भी प्रकट की थी । उनकी इच्छानुसार जब जैनसिद्धान्तभवनकी नीव पड़ी थी, तब आशा हुई थी कि यह जैनधर्मका अध्ययन करनेवालोंके लिए एक अच्छा साधन बन जायगा । शुरू शुरूमें इस आशालताके मनोरम फल भी दृष्टिगोचर होने लगे थे; परन्तु आगे यह लता मुरझाने लगी । भविष्यके विषयमें कुछ कहा नहीं जा सकता; पर इस समय तो जैनसिद्धान्त भवनकी दशा विशेष आशाजनक नहीं है । अर्थात् इस समय तक जैनधर्मके अध्ययन और अन्वेषणके लिए कोई भी उल्लेखयोग्य संस्था नहीं है ।

गत महावीर-जयन्तीके समय इन्दौरके धनकुबेर सेठ हुकमचन्दजीने जो व्याख्यान दिया था उससे मालूम हुआ था कि सेठजी और उनके भ्राताओंकी सहायतासे इन्दौरमें ‘ महावीर पुस्तकालय ’ नामका एक अच्छा पुस्तकालय खुलेगा । अवश्य ही इस प्रकारका पुस्तकालय केवल उक्त सेठोंकी ही नहीं सारे जैनसमाजकी प्रतिष्ठा और शोभाका निदर्शन होगा; परन्तु देखते हैं कि अभी तक उसकी कुछ भी चर्चा नहीं है । यदि सेठजी चाहें और वे जैनगजटके सम्पादक जैसे धर्मात्माओंके बहकानेमें न आ जावें, तो उनके लिए यह बहुत ही मामूली कार्य है । जो केवल भगवान्की प्रतिमाओंके बनावानेमें ही लाख लाख रुपये खर्च कर देते हैं उनके लिए भगवान्की वाणीकी प्रतिष्ठामें लाख पचास हजार रुपया लगा देना कोई बड़ी बात नहीं है । सेठजीने प्रायः सभी प्रकारकी समयोपयोगी संस्थायें खोल रक्खी हैं, एक पुस्तकालयकी ही कमी है, इससे भी आशा होती है कि वे अपने वचनकी पूर्ति अवश्य करेंगे ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हम चाहते हैं कि सेठजी इन्दौरमें एक विशाल पुस्तकालय अवश्य खोलें। यह बड़े ही पुण्यका और जैनधर्मकी प्रभावनाका कार्य है। जो धर्मात्मा और पण्डितगण यह नहीं चाहते हैं कि वह तीनों सम्प्रदायके ग्रन्थोंका संयुक्त पुस्तकालय हो, उनसे हमारी सविनय प्रार्थना है कि वे केवल दिगम्बरसम्प्रदायके पुस्तकालयके रूपमें ही उसकी स्थापना करावें। उसकी भी कम अवश्यकता नहीं है; बिलकुल न होनेसे तो एक ही सम्प्रदायका होना अच्छा है। पर ऐसी कृपा न करें, जिससे पुस्तकालय खुले ही नहीं।

साहित्यकी उन्नतिके लिए, इतिहासकी खोजोंके लिए और पदार्थका स्वरूप समझनेके लिए पुस्तकालय कितनी आवश्यक संस्था है इसको साधारण लोग नहीं समझ सकते। जिनकी ज्ञानपिपासाकी सीमा नहीं है, जिन्हें विविध ग्रंथकारोंके विचारोंको तुलनात्मक पद्धतिसे अध्ययन करनेका महत्त्व मालूम है, जो प्रत्येक बातको स्पष्ट रूपमें समझना चाहते हैं और जो मतभेदोंके मूलको खोज निकालना चाहते हैं, वे ही विद्वान् पुस्तकालयोंकी महिमाको समझते हैं। अनेक अंशोंमें यह कहना बहुत ही सत्य है कि जिस देशमें या जिस स्थानमें पुस्तकालय नहीं है वहाँ विशाल बुद्धिशाली विद्वान् उत्पन्न नहीं हो सकते। जिस समय जैनसमाजमें बड़े बड़े विशाल पुस्तकालय थे और वे सर्व साधारणके उपयोगमें आते थे उस समय जैनधर्मके जाननेवाले सैकड़ों प्रतिभाशाली विद्वानोंका अस्तित्व था। इस समय पुस्तकालयोंका अभाव है, अतएव अच्छे विद्वानोंका भी अभाव है। दो चार ग्रन्थोंको पढ़ लेनेसे या परीक्षायें पास कर लेनेसे कोई विद्वान् नहीं हो सकता। बहुदर्शी विद्वानोंके बनानेके साधन पुस्तकालय ही हैं, विद्यालय नहीं। संसारमें विद्यालयोंकी अपेक्षा पुस्तकालयोंने ही अधिक विद्वान् तैयार किये हैं। जैनसमाजमें विद्यालय कई हो चुके हैं, पर पुस्तकालय एक भी नहीं है, अतएव इस महान् पुण्यकार्यकी ओर समाजके लक्ष्मीपुत्रोंका ध्यान शीघ्र ही आकर्षित होना चाहिए।

जैनधर्मके विद्यार्थी एक अच्छे पुस्तकालयके अभावको निरन्तर अनुभव करते हैं। कभी कभी उन्हें बड़ा कष्ट होता है। जिस ग्रन्थको वे आज चाहते हैं वह शक्तिभर प्रयत्न करने पर भी महीनोंतक नहीं मिलता है। कभी कभी तो मिलता ही नहीं। इससे बहुतसे लोग निराश हो जाते हैं और अन्य किसी धर्मके विद्यार्थी बन जाते हैं। यह तो हुई समर्थोंकी बात; और जो निर्धन हैं, उनकी ज्ञानपिपासाके शान्त होनेका तो कोई उपाय ही नहीं है। जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था, माणिकचन्द ग्रन्थमाला आदिके संचालकोंसे पूछिए कि उन्हें किसी एक ग्रन्थके प्राप्त करनेके लिए कितना परिश्रम करना पड़ता है और कितना समय खोना पड़ता है। ग्रन्थोंकी प्राप्तिका साधन न होनेसे कोई कोई ग्रन्थ तो हमें केवल एक ही प्रतिके आधारसे प्रकाशित करना पड़ते हैं और इस कारण उनका संशोधन जैसा चाहिए वैसा नहीं होने पाता।

इस समय यदि कोई चाहे तो बहुत थोड़े खर्चसे एक बहुत अच्छा पुस्तकालय बन सकता है। कोई प्रयत्न करनेवाला हो तो इस समय हजारों हस्तलिखित ग्रन्थ इतने सस्ते मूल्यमें संग्रह किये जा सकते हैं, जितनेसे दूने मूल्यमें भी वे लिखाये नहीं जा सकते। ऐसे कई भण्डार मौजूद हैं, जिनके मालिक चुपचाप उन्हें बेच देनेके लिए तैयार हैं और वे इस समय मिट्टीके मूल्यमें मिल सकते हैं। जयपुर आदि शहरोंमें और उनकी देहातोंमें ऐसे अनेक निर्धन लोग हैं, जो अपने घरोंमें निरर्थक पड़े हुए दो दो चार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चार संस्कृत प्राकृतके प्राचीन ग्रन्थोंको बहुत थोड़े दामोंमें, पर चुप चाप, दे सकते हैं। गवर्नमेंटकी लायब्रेरियोंके लिए इस तरह हजारों ग्रन्थ खरीदे जा चुके हैं। कर्नाटक प्रान्तके भी ताड़पत्रों पर लिखे हुए ग्रन्थ इसी तरीकेसे घूम फिर कर संग्रह किये जा सकते हैं। इसके सिवाय यदि कोई अच्छा पुस्तकालय स्थापित होगा और उस पर सारे समाजका विश्वास जम जायगा, सारे समाजके उपयोगके लिए उसका संग्रह होगा तो उसे सैकड़ों हस्तलिखित ग्रन्थ दानस्वरूप भी मिल जायँगे। ऐसे सैकड़ों स्थान हैं, जहाँ दश दश पाँच पाँच संस्कृत प्राकृतके ग्रन्थ मौजूद हैं; परन्तु उनका कोई पढ़ने-समझनेवाला नहीं है। प्रयत्न करनेसे और सर्व साधारणका विश्वास सम्पादन करनेसे वे सब ग्रन्थ मुफ्तमें मिल सकते हैं। गरज यह कि इस समय एक विशाल पुस्तकालय बहुत ही सुगमतासे स्थापित हो सकता है।

इस समयतक जितने ग्रन्थ बन चुके हैं और उपलब्ध हो सकते हैं उन सबकी कमसे कम एक एक प्रति इस पुस्तकालयमें अवश्य संग्रह की जानी चाहिए। संस्कृत, प्राकृत, ढूँढारी, व्रजभाषा, मराठी, गुजराती, कनड़ी आदि कोई भी भाषा और लिपि ऐसी न रहे; जिसके जैनग्रन्थ इस भण्डारमें न हों। कुछ समयके बाद इस पुस्तककालयके विषयमें यह उक्ति चरितार्थ हो जानी चाहिए कि 'यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्'—जो इसमें नहीं है, वह कहीं भी नहीं है। प्रत्येक ग्रन्थकी प्राचीन प्रतियोंके संग्रह करनेकी ओर अधिक लक्ष्य दिया जाना चाहिए। जो प्रति जितनी ही पुरानी होती है वह उतने ही महत्त्वकी होती है। पुस्तकालयमें एक भाग छपे हुए ग्रन्थोंका भी होना चाहिए। उसमें अब तकके छपे हुए तमाम मुद्रित ग्रन्थोंकी एक एक प्रति अवश्य रहे। इसी विभागमें इंडियन एण्टिकृवेरी, एपिग्राफिआ इंडिका, एपीग्राफिआ कर्नाटिका, मुख्य मुख्य ग्येजेटियर, भाण्डारकर, पिटर्सन, आदिकी रिपोर्टें आदि भी रहें जिनमें अबतक उपलब्ध हुए जैनशिलालेखों, दानपत्रों और जैनग्रन्थोंकी प्रशस्तियों आदिका समस्त संग्रह हो। गरज यह कि जैनधर्म और जैन इतिहासके अध्ययन करनेकी समस्त सामग्री इस पुस्तकालयमें प्रस्तुत रहनी चाहिए।

बहुत ही अच्छा हो, यदि यह संस्था किसी एक ही धनी धर्मात्माकी ओरसे स्थापित हो और इसके द्वारा किसी पुण्यात्माका नाम सदाके लिए अजर अमर हो जाय। पर यदि यह संभव न हो, धनियोंके भाग्यमें यह सुयश कमाना न लिखा हो, तो किसी सभा सुसायटीकी ओरसे ही इसके लिए उद्योग होना चाहिए। बम्बई प्रान्तिक सभाके कार्यकर्ता यदि चाहें तो—उन्हें इस कार्यमें अच्छी सफलता प्राप्त हो सकती है। बम्बई स्थान भी इसके लिए बहुत उपयुक्त है। यहाँके तेरहपंथी मंदिरमें पहलेहीसे अच्छा ग्रंथसंग्रह है। इसके सिवाय स्वर्गीय सेठ माणिकचन्द्जीके संग्रहके लगभग २०० ग्रंथ और बीसपंथी मन्दिरके भी कुछ ग्रन्थ पुस्तकालयके लिए मिल सकते हैं। इतने ग्रन्थोंसे पुस्तकालयका प्रारंभ हो सकता है। इसके बाद चन्दा किया जाय और नियमित रूपसे ग्रंथ एकत्र होते रहें। यदि इस कार्यमें प्रतिवर्ष चार पाँच हजार रुपये ही खर्च किये जायँ तो कुछ वर्षोंमें बहुत बड़ा संग्रह हो सकता है। जैन महासभासे यद्यपि हमें कोई आशा नहीं है—क्योंकि इसके कार्यकर्ता कुछ हैं ही नहीं, और वास्तवमें वे कुछ करना ही नहीं चाहते हैं; परन्तु जब वे ग्रंथोंके छपानेके कट्टर विरोधी हैं और उन्हें ग्रन्थोंके छपानेमें भयंकर पाप दिखता है तब उन्हें चाहिए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कि वे अपनी मुद्रणाविरोधी 'बात' को रखनेके लिए हस्तलिखित ग्रंथोंका एक ऐसा पुस्तकालय खोल दें और उसके साथ ही ग्रन्थोंके लिखानेका एक ऐसा कार्यालय खोल दें, जिससे इस समय जितने छापेके विरोधी हैं और समर्थ हैं, कमसे कम वे तो सदा हस्तलिखित ग्रन्थोंके उपासक बन रहें। यदि वे ऐसा नहीं कर सकते तो उनका विरोध व्यर्थ बकवादके सिवाय और कुछ नहीं है।

यदि कोई उत्साही और कार्यपटु पुरुष इस महान् कार्यके लिए अपना जीवन दे दे, एक विशाल पुस्तकालयकी स्थापनाको अपने जीवनका व्रत बना ले और निरन्तर इसकि लिए उद्योग करे, तो उसे अवश्य सफलता होगी और वह अमर हो जायगा। हम देखते हैं कि शिक्षाप्रचार आदिके कार्योंमें जब कई सज्जन लगे हुए हैं, तब इस कार्यमें लगनेके लिए यह बात नहीं है कि कोई निकलेगा ही नहीं। बात यह है कि अभीतक इसकी आवश्यकताकी ओर लोगोंका ध्यान ही आकर्षित नहीं किया गया है—इस विषयकी चर्चा ही नहीं है।

इस एक ही पुस्तकालयसे हमें सन्तोष न होगा। प्रत्येक बड़े नगरमें और तीर्थक्षेत्रोंमें भी पुस्तकालय स्थापित होने चाहिएँ। यह बड़े दुःखकी बात है कि हमारी शिक्षासंस्थाओंमें —काशी, मोरेना, इन्दौर, मथुरा आदिके विद्यालयोंमें—एक भी अच्छा पुस्तकालय नहीं है। इनमें शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियोंको और ग्रन्थ तो मिलेंगे ही कहाँसे, जो पाठ्यग्रन्थ हैं, यदि छपे हुए नहीं हैं तो वे भी उन्हें कठिनाईसे मिलते हैं। ऐसी दशामें यदि इन विद्यालयोंसे निकले हुए छात्रोंका ज्ञान बहुत ही परिमित और संकुचित रहे तो आश्चर्य ही क्या है? हमारी समझमें इन सब संस्थाओंमें एक एक मध्यमश्रेणीका पुस्तकालय होना चाहिए, जिसमें कमसे कम प्रसिद्ध ग्रन्थोंकी एक एक प्रति अवश्य रहे। ये संस्थायें जब हजार हजार रुपया **मासिक** अपने निर्वाहके लिए खर्च करती हैं तब पाँचसौ रुपया **वार्षिक** ग्रन्थसंग्रहके लिए भी खर्च कर सकती हैं।

अब हमें अपने प्राचीन पुस्तकालयोंके उद्धारकी ओर भी लक्ष्य देना चाहिए। इस समय भी हमारे कई ऐसे पुस्तकालय बचे हुए हैं कि यदि हम उनका उद्धार कर दें, उनकी व्यवस्था ठीक कर दें तो बहुत बड़ा काम हो जाय। नागौर, कारंजा, ईडर, आमेर, कोल्हापुर, आदिके भण्डारोंमें बहुत बड़ा ग्रन्थसमूह सुना जाता है। मूडबिद्री, श्रवणबेलगुल, सोनागिर, महुआ, सोजित्रा, प्रतापगढ़, लातूर, मलखेड़, दिल्ली, आदि स्थानोंमें भी छोटे मोटे पुस्तकभण्डार हैं। यदि इन सब स्थानोंके पंच तथा अधिकारी चाहें तो अपने भण्डारोंके ग्रथोंकी सूची बनाकर उन्हें हिफाजतसे रख सकते हैं और यदि कहींसे कोई किसी ग्रन्थको मँगाना चाहे तो उसके लिए उस ग्रन्थकी नकल कराके भेज सकते हैं। उनमें इस प्रकारकी चाह उत्पन्न होने लगे, इसके लिए सभा सुसाइटियोंको, उपदेशकोंको और धनियोंको प्रयत्न करना चाहिए। इस विषयके प्रस्ताव हमारी सभाओंमें प्रतिवर्ष किये जाने चाहिए। बल्कि हमारी किसी प्रधान सभाको इसके लिए निरन्तर अमली कार्रवाई करते रहनेके लिए भी कोई व्यवस्था कर देनी चाहिए। इस उद्योगसे हमारे कई पुराने पुस्तकालय फिर खड़े हो सकते हैं और सर्वसाधारणको उनसे बहुत कुछ लाभ पहुँच सकता है।

इतिहासकी ओर भी जैनसमाजका ध्यान बहुत ही कम गया है। इस विषयके विद्यार्थियोंका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमारे यहाँ प्रायः अभाव है। संस्कृतके पण्डित और अँगरेजीके ग्रेज्युएट दोनों ही इस विषयमें निश्चेष्ट हैं। संस्कृतके पाण्डित तो इस विषयको कोई कामकी चीज ही नहीं समझते हैं; बल्कि कोई कोई तो अपनी बढ़ी हुई मूर्खताका प्रदर्शन करनेके लिए इतिहासका मखौल उड़ाया करते हैं। रहे बाबू लोग, सो जैनसमाजके दुर्भाग्यसे शिक्षा-प्रचार, समाजसुधार आदिके कार्योंमें भी जब वे आगे नहीं बढ़ रहे हैं और 'खाने पीने चैन उड़ाने' के लिए ही जब उनका जन्म हुआ है तब इस सिरपच्चीके काममें भला वे क्यों जान लड़ाने लगे? इस समय अकेले दिगम्बर जैनसमाजमें ही कई सौ ग्रेज्युएट मौजूद हैं; परन्तु देखते हैं कि इतिहासके क्षेत्रमें उनमेंसे अब तक एक भी आकर खड़ा नहीं हुआ है। जिस अँगरेजी शिक्षाने इस देशमें इतिहासके ज्ञानका पुनरुद्धार किया है, उसी शिक्षाको पाकर जैनसमाजके बाबुओंने इतिहासकी ओर आँख उठाकर देखनेकी भी कसम ले रक्खी है। इसे हम अपना दुर्भाग्य न कहें तो और क्या कहें?

कोई दो ढाई वर्ष पहले सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ विन्सेंट स्मिथ साहबने 'पुरातत्त्वकी खोज करना जैनोंका कर्तव्य है,' नामका एक लेख प्रकाशित कराया था और उसमें जैनसमाजके धनिकों और शिक्षितोंका ध्यान इस ओर आकर्षित किया था। इस लेखको जैनहितैषीके ग्यारहवें भागके ऐतिहासिक अंकमें हमारे पाठक भी पढ़ चुके हैं। लेख बड़ा ही महत्त्वका था और उसमें जैनोंके कर्तव्यका बड़ी मार्मिकतासे स्मरण कराया गया था। परन्तु हम देखते हैं कि जैनोंकी निश्चेष्टताकी सुदृढ़ दीवाल पर उस लेखके शब्दोंने पानीकी एक छोटीसी बौछारसे अधिक काम नहीं किया। न कोई धनिक ही इस काममें धन खर्च करनेके लिए तैयार हुआ और न हमारे शिक्षित ही टससे मस हुए। यह कितने दुःखकी बात है कि हमारे कर्तव्यको दूसरे लोग स्मरण कराते हैं और फिर भी हम कार्यतत्पर नहीं होते हैं!

इस विषयमें हम धनिकोंको उतना अधिक दोषी नहीं समझते हैं, जितना कि शिक्षितोंको समझते हैं। क्योंकि सर्वसाधारणके समान धनिक भी, इतिहासका वास्तविक महत्त्व क्या है, उसे अभी तक नहीं समझ सके हैं। दोषी तो वे हैं, जो इतिहासकी महिमाको अच्छी तरह जानते हैं और फिर भी इस दिशामें कुछ भी प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। इस तरह चुप बैठे हैं, मानों करनेके लिए अब कुछ बाकी ही नहीं है! हमें विश्वास है कि ये लोग यदि कुछ हाथ पैर हिलायँगे, तो धनिकोंकी ओरसे इस कार्यमें आर्थिक सहायता मिलना कुछ कठिन नहीं है। उन्हें इस विषयका महत्त्व समझाया जायगा, तो यह संभव नहीं कि उनकी थैलीके बन्धन ढीले न पड़ें।

जहाँतक हम जानते हैं, जैनसमाजमें अधिक नहीं तो २०-२५ नये ग्रेज्युएट प्रतिवर्ष ही होते होंगे और इनमेंसे पाँच सात युवक अवश्य ऐसे होते होंगे जिनकी दूसरी भाषा संस्कृत है। यह क्रम कई वर्षोंसे जारी है। यदि हम आशा करें कि इनमेंसे अधिक नहीं, पर दो चार नवयुवक ही ऐसे निकल आवेंगे जो अध्यापकी, वकालत आदि निर्वाहपयोगी कार्य करते हुए अवकाशके समय इस विषयकी ओर ध्यान देंगे और धीरे धीरे अपने अध्ययन और अन्वेषण-बलको बढ़ाकर जैनधर्मका उपकार करेंगे तो कुछ अनुचित न होगा। इस समय हमारे कई छात्राश्रम (बोर्डिंग) ऐसे चल रहे हैं, जिनमें जैनधर्मकी शिक्षा दी जाती है, और कमसे कम उनका चित्त जैनधर्मकी ओर तो अवश्य आक-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

र्षित किया जाता है । इतने वर्षोंके प्रयत्नसे उनमेंसे निकले हुए विद्यार्थियोंमेंसे यदि दो चार पर भी इतना संस्कार न हुआ कि वे जैनधर्मके और उसके इतिहासके अध्ययनकी ओर प्रवृत्त हों; तो इन बोर्डिंगोंसे और विद्यार्थियोंसे हम और क्या आशा कर सकते हैं ?

यदि यह संभव न हो-अपनी हार्दिक रुचिसे स्वार्थत्यागपूर्वक कोई इस विषयका अध्ययन करनेवाला न निकले, तो समाजको चाहिए कि वह कमसे कम पाँच ग्रेज्युएटों या अंडर ग्रेज्युएटोंको-जिनकी संस्कृतमें अच्छी योग्यता हो और जिन्होंने कालेजोंमें इतिहासको मुख्यतासे पढ़ा हो,-छात्रवृत्तियाँ देवे और उन्हें इस विषयका खास तौरसे अध्ययन करावे; फिर योग्यता प्राप्त कर लेने पर मि० विन्सेंट स्मिथकी सम्मतिके अनुसार उन्हें सरकारी पुरातत्त्वविभागके अधिकारियोंके हाथके नीचे काम करनेके लिए रख देवे । इस पद्धतिसे कुछ ही वर्षोंमें जैन इतिहासकी खास तौरसे चर्चा करनेवाले विद्वान् तैयार हो जायँगे और उनके द्वारा जैनधर्मकी प्राचीन कीर्तिकी ऐसी ऐसी बातें प्रकट होंगी जिनकी हमने कभी स्वप्नमें भी कल्पना न की होगी ।

संस्कृतके विद्वानोंकी संख्या भी अब हमारे यहाँ सन्तोष योग्य होती जाती है । उनमेंसे भी यदि दो चार सज्जनोंका ध्यान इस ओर आकर्षित हो तो बहुत काम हो सकता है। वे मन्दिरों और प्रतिमाओंके शिलालेखों, दानपत्रों, पट्टावलियों, ग्रन्थोंकी प्रशस्तियों, ग्रन्थोंके भीतरी वर्णनों और कथाग्रन्थोंके आधारसे जैनधर्मके इतिहासके बहुत बड़े अभावोंकी पूर्ति कर सकते हैं। यदि वे करना चाहें तो उनके लिए यह कार्य कोई कठिन नहीं है। अवश्य ही इस कार्यमें परिश्रम बहुत होता है और वह बिना हार्दिक रुचि और सत्यप्रेमके नहीं हो सकता है ।

सबसे पहले हमें अपना इतिहास तैयार करनेके साधन एकत्रित करने चाहिए । साधनोंके न होनेसे ही इस विषयकी ओर लोगोंकी कम प्रवृत्ति होती है । इस विषयके सबसे बड़े साधन पुस्तकालय हैं, जिनके विषयमें पहले बहुत कुछ लिखा जा चुका है। दूसरे साधन शिलालेख आदिके संग्रह-ग्रन्थ हैं । इनकी बडी भारी आवश्यकता है । हमारी समझमें ये संग्रह नीचे लिखे अनुसार होने चाहिए ।

प्राचीनलेखसंग्रह । अबतक जितने जैन शिलालेख, दानपत्र, स्मारक-लेख आदि मिल चुके हैं, उन सबका संग्रह इसमें रहना चाहिए । इंडियन एण्टिक्वेरी, एपीग्राफिआ इंडिका, एपीग्राफिआ कर्नाटिका, इन्स्क्रप्शन एट् श्रवणबेल्गोल, आदि ग्रन्थोंसे यह बहुत कम परिश्रमसे ही तैयार कराया जा सकता है । यह कई भागोंमें निकलना चाहिए और यदि बन सके तो इसके प्रत्येक लेखके सम्बन्धमें कुछ नोट भी लगाये जाने चाहिए ।

प्रतिमालेखसंग्रह । हमारे मन्दिरों और तीर्थोंमें जितनी प्रतिमायें मिलती हैं, प्रायः उन सबकी ही आसनमें कुछ न कुछ लिखा रहता है। इतिहासके तैयार करनेमें इस प्रकारके लेख भी बड़ी सहायता देते हैं। अतएव इन लेखोंका संग्रह भी कई भागोंमें निकलना चाहिए । यदि हमारे पढ़े लिखे भाई अपने अपने ग्रामों और और नगरोंके मन्दिरोंकी प्रतिमाओंके लेख सावधानीके साथ नकल करके हमारे पास भेज दें, तो एक बहुत बड़ा संग्रह तो सकता है और वह ऐतिहासिक नोटोंके साथ प्रकाशित किया जा सकता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थप्रशस्तिसंग्रह । प्रायः सभी जैन-ग्रन्थोंके अन्तमें ग्रन्थकर्ताका, उसकी गुरुपरम्पराका और ग्रन्थ लिखने-लिखानेवालों आदिका परिचय दिया हुआ रहता है। ये परिचय भी इतिहासके बहुत बड़े साधन हैं। अतएव इनका संग्रह भी कई भागोंमें तैयार कराया जाना चाहिए। डा० भाण्डारकर, पिटर्सन, आदिकी रिपोर्टोंसे इस कार्यमें बहुत कुछ सहायता मिल सकती है।

यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि हमारे श्वेताम्बरी भाइयोंकी ओरसे इस प्रकारका उद्योग होने लगा है। हमारे पाठकोंके परिचित श्रीयुत मुनि जिनविजयजी इस समय 'प्राचीन-जैनलेखसंग्रह' नामक ग्रन्थका सम्पादन कर रहे हैं। उसके दो भाग हैं, एक प्राकृतभाग और दूसरा संस्कृतभाग। पहले प्राकृत भागके भी दो हिस्से हैं जिनमेंसे एक हिस्सा प्रकाशित हो चुका है। इसमें खण्डगिरि उदयगिरिके महाराजा खारवेलके लेख और उनका विस्तृत विवेचन है। दूसरे हिस्सेमें मथुराके शिलालेखों तथा प्रतिमालेखोंका संग्रह और विवरण रहेगा। यह भाग भी लगभग तैयार हो गया है। संस्कृत लेखोंका भाग बहुत बड़ा है और वह कई हिस्सोंमें प्रकाशित होगा। गुजराती भाषामें श्वेताम्बर सम्प्रदायके साधुओंके बनाये हुए सैकड़ों ग्रन्थ हैं, जो रासा कहलाते हैं। इन रासाओंकी प्रशस्तियोंका एक विशाल संग्रह श्वेतांबर जैन कान्फरेंसकी ओरसे प्रकाशित होगा। इसका सम्पादन हेरल्ड-सम्पादक श्रीयुत मोहनलाल दलीचन्दजी देसाई बी. ए., एल एल. बी. कर रहे हैं। कलकत्तेके श्रीयुत बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर एम. ए., एल एल. बी. नामके सज्जन श्वेताम्बर प्रतिमाओंके लेखोंका संग्रह कर रहे हैं। उसके कई छपे हुए फार्म हमने स्वयं देखे हैं। हमारे दिगम्बरी भाइयोंको भी इस दिशामें प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रयत्नसे ऐतिहासिक क्षेत्रमें बड़ा काम होगा।

प्रतिमाओंके लेखोंका संग्रह यदि दिगम्बर जैनतीर्थक्षेत्रकमेटीकी ओरसे कराया जाय, तो बहुत सुगमतासे हो सकता है। ये लेख उसके काममें भी आ सकते हैं, इस लिए यह उसका काम भी है। हमें आशा नहीं है कि उसके मुकद्दमेबाज़ कार्यकर्ता इस अच्छे कार्यको सम्पादन कराना आवश्यक समझेंगे; परन्तु वे करें या न करें, हम अपने सूचना करनेरूप कर्तव्यका पालन किये देते हैं।

जैन इतिहासके हम दो भाग करते हैं। एक बाह्य और दूसरा अन्तरंग। पहले भागमें महावीर भगवान्‌से लेकर अबतकका शृंखलाबद्ध इतिहास रहेगा। जैनधर्मका कब कब किन किन देशोंमें प्रचार हुआ, उसमें हानि और वृद्धि कब कब हुई, इसके पालनेवाले कौन कौन राजा हुए, राजाओंका धर्म यह कब तक रहा और कबसे केवल प्रजाका धर्म बन गया, किन किन राजाओंने इसकी उन्नति की और किन किनने इसे हानि पहुँचाई, इसमें कौन कौन भेद कब कब हुए, प्रत्येक भेदकी शुरूसे अबतककी गुरुपरम्परा, जुदी जुदी भाषाओंमें जैनधर्मके साहित्यकी उत्पत्ति वृद्धि और पुष्टि, बिहार–बंगाल–उड़ीसा आदि प्रान्तोंमेंसे जैनधर्मके लुप्त हो जानेके बाहरी कारण, आदि सब बातोंका समावेश इस भागमें होगा। शिलालेख, दानपत्र, प्रशस्तियाँ, विदेशी पर्यटकोंके ग्रन्थ, जैनेतर ग्रन्थोंके उल्लेख आदि साधनोंसे यह बाह्य इतिहास तैयार हो जायगा। दूसरे भागमें जैनधर्मके अन्तरंगका—उसके हृदयका—इतिहास रहेगा। इसका तैयार करना बहुत बड़े परिश्रमका काम है और यही सबसे अधिक महत्त्वका है। यह सैकड़ों विद्वानोंके अनवरत अध्ययन और अध्यवसायसे बन सकेगा।

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

इसके लिए जैनधर्मके समस्त सम्प्रदायोंके ग्रन्थोंका, उनमें घुसकर–पैठकर अध्ययन करना होगा और सबका तुलनात्मक पद्धतिसे विचार करना होगा। इससे मालूम होगा कि भगवान् महावीरने और उनके पहले भगवान् पार्श्वनाथने जिस जैनधर्मका प्रतिपादन किया था, वह ज्योंका त्यों चला आ रहा है, या उसमें कुछ परिवर्तन भी हुए हैं। देशकालकी परिस्थितियोंका, पड़ौसी धर्मोंका, राज्योंके उत्थान–पतनोंका, धर्मगुरुओं-या आचार्योंके पारस्परिक द्वेषों या हठाग्रहोंका और उसके अनुयायियोंकी मूर्खताका उस पर कब कब, कितना कितना और किन किन रूपोंमें प्रभाव पड़ा है। इसमें दिगम्बर और श्वेताम्बरादि भेद कब कब और किन किन कारणोंसे हुए, गण-गच्छादि भेदोंके होनेकी आवश्यकता क्यों हुई, भट्टारक कैसे बन गये और दिगम्बर गुरुओंकी जगह उनकी पूजा कैसे होने लगी, क्षेत्रपाल आदि देवोंकी पूजा क्यों और कब चली, तेरहपंथ और बीसपंथ नामक भेद क्यों हुए, आदि सब प्रश्नोंका समाधान इतिहासके इसी भागसे होगा। इस भागके सबसे बड़े साधन जैनग्रन्थ हैं। ये जितनी ही सुगमतासे प्राप्त हो सकेंगे, इस भागकी तैयारी भी उतनीही सुगमतासे होगी।

ग्रन्थोंके छपानेके विषयमें हमारा दिगम्बर सम्प्रदाय बहुत ही सुस्त है, जब कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय इस विषयमें बहुतही आगे बढ़ रहा है। उसके ग्रन्थमुद्रणकार्यको देखकर आश्चर्य होता है। भारतवर्षका कोई भी धर्म या सम्प्रदाय इस विषयमें उसकी बराबरी नहीं कर सकता। कोई महीना ऐसा नहीं जाता है, जिसमें दश पाँच श्वेताम्बर ग्रन्थ प्रकाशित न होते हों। बेचे भी वे बहुत ही सस्ते जाते हैं। सैकड़ों ग्रन्थ तो केवल दान करनेके लिए ही छपाये जाते हैं। दिगम्बर-सम्प्रदायके अबतक जितने ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनसे अधिक नहीं तो पच्चीस तीस गुने ग्रन्थ अवश्य ही श्वेताम्बर सम्प्रदायके छप चुके होंगे। हमारे दिगम्बरी भाइयोंको भी अब इस ओर ध्यान देना चाहिए और संस्कृत प्राकृतके तमाम उपलब्ध साहित्यको प्रकाशित करानेका यत्न करना चाहिए।

अथूंणाका शिलालेख।

[ले०–श्रीयुत **बाबू जुगलकिशोर मुख्तार।**]

डूँगरपुरके अंतर्गत अथूंणा (उच्छूणक) नामका एक स्थान है, जो एक समय विशाल नगर था; और परमारवंशी राजाओंकी राजधानी रह चुका है। इस समय यह स्थान एक छोटेसे गाँवके रूपमें आबाद है और इसके पासही सैकड़ों मंदिरों तथा मकानों आदिके खंडहर भग्नावशेषके रूपमें पाये जाते हैं। यहाँसे एक जैनशिलालेख मिला है जो आजकल अजमेरके म्यूजियममें मौजूद है। यह शिलालेख वैशाख सुदि ३ विक्रम संवत् ११६६ का लिखा हुआ है और उस वक्त लिखा गया है जब कि परमारवंशी मंडलीक (मंडनदेव) नामके राजाका पौत्र और चामुंडराजका पुत्र 'विजयराज' स्थलि देशमें राज्य करता था। उच्छूणक नगरमें, उस समय 'भूषण' नामके एक नागरवंशी जैनने श्रीवृषभदेवका मनोहर जिनभवन बनवाकर उसमें वृषभनाथ भगवान्की प्रतिमाको स्थापित किया था, उसीके सम्बन्धका यह शिलालेख है। इसमें भूषणके कुटुम्बका परिचय देनेके सिवाय माथुरान्वयी श्रीछत्रसेन नामके एक आचार्यका भी उल्लेख किया है, जो अपने व्याख्यानों द्वारा समस्त सभाजनोंको संतुष्ट किया करते थे और भूषणका पिता 'आलोक' जिनका परमभक्त था। माथुरसंघी इन आचार्यका, अभीतक कोई पता नहीं था। माथुरान्वयसे सम्बंध रखनेवाली काष्ठासंघकी उपलब्ध गुर्वावलीमें भी छत्रसेन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुरुका कोई उल्लेख नहीं है *। इस शिलालेखसे माथुरसंघके एक आचार्यका नया नाम मालूम हुआ है। इस शिलालेखमें भूषणके वंश और कुटुम्बका जो परिचय दिया है उसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है:—

'तलपाटक' नामके पत्तनमें + नागर वंशके मुख्य रत्न श्रीमान् 'अम्बट' नामके एक प्रधान वैद्य हुए, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता होनेके सिवाय जैनागमकी वासनासे इतने अनुवासित थे कि उनकी रगरगमें (अस्थि और मज्जामें) जैनधर्म समाया हुआ था। वैद्यजी कलियुगके प्रभावसे बाहिर्भूत, गृहस्थावस्थामें भी इंद्रियोंके प्रसारको रोकनेवाले और देशव्रतसे अलंकृत थे। जिस समय आप वनमें जाकर (सामायिकादि) आवश्यककर्ममें लीन होते थे उस समय अच्छे अच्छे श्रेष्ठ मनुष्य आपके सन्मुख शिष्योंके सदृश हाथ जोड़ते और प्रातःकाल आपकी उपासना करते थे। आपके असाधारण दर्शनगुणोंसे चमत्कृत होकर चक्रेश्वरी देवी भी हमेशा पुत्रीके समान आपकी सेवा किया करती थी। वैद्यजीके 'पापाक' नामका एक पुत्र हुआ, जो निर्मल बुद्धिका धारक और शास्त्रोंका पारगामी होनेके सिवाय सम्पूर्ण आयुर्वेदका ज्ञाता था। उसने सम्पूर्ण दोषोंकी प्रकृतिको अच्छी तरहसे निर्णय कर लिया था और वह उनकी चिकित्सामें प्रवीण था। साथ ही रोगाक्रान्त सभी मनुष्योंके प्रति उसकी दया अतिशय प्रसिद्ध थी। पापाकके अनेक शास्त्रोंमें निपुण १ आलोक, २ साहस और ३ लल्लुक नामके तीन पुत्र हुए। इनमेंसे पहला आलोक नामका पुत्र स्वभावसे ही बड़ा बुद्धिमान् था; उसके हृदयदर्पणमें संपूर्ण ऐतिह्य (ऐतिहासिक?) तत्त्व स्फुरायमान था। वह संवेगादि गुणोंका धारक, सम्यग्दृष्टि, दानी, शीलवान्, रूपवान्, श्रुतपात्र, लक्ष्मीपात्र और स्वकुलसमिति तथा साधुवर्गका आधारभूत था; साथ ही वह आनंदसे रहनेवाले भोगियों और योगियों दोनोंमें ही प्रधान था, और एकचित्त होकर श्रीछत्रसेन गुरुके चरणकमलकी, जिन्हें माथुरान्वयरूपी आकाशका सूर्य बतलाया है, सेवा किया करता था। आलोककी धर्मपत्नीका नाम 'हेला' था। उससे तीन पुत्ररत्न उत्पन्न हुए, जो सभी विवेकी और नयाढ्य थे। पहले पुत्रका नाम 'पाहुक' दूसरेका 'भूषण' और तीसरेका 'लल्लाक' था। पाहुक निर्मल ज्ञानका धारक, गुरुजनभक्त और बड़ा ही कुशाग्रबुद्धि था। उसकी इस कुशाग्रबुद्धिको दिखलाते हुए लिखा है कि जिनप्रवचनके सम्बधमें उसका ऐसा विशाल प्रश्नजाल होता था जिसमें गणधर भी चकरा जायँ; दूसरोंकी तो बात ही क्या। वह करणचरणानुयोगरूप अनेक शास्त्रोंमें प्रवीण, विषयोंसे विरक्त, दानतीर्थमें प्रवृत्त, शान्तचित्त और निर्मल श्रावकीय व्रतसे युक्त था। दूसरे पुत्र भूषणकी प्रशंसामें लिखा है कि वह लक्ष्मीका पात्र, कान्तिका कुलगृह, कीर्तिका मंदिर, सरस्वतीका क्रीडापर्वत, निर्मलबुद्धिका रतिवन, क्षमावल्लीका कंद और विस्तृत कृपाका निवासस्थान था। साथ ही, वह रूपसे कामदेवके, सुभगतासे गणधरके, संपत्तिसे कुबेरके, बढ़े हुए विवेकसे बृहस्पतिके, महोन्नतिसे मेरुके, हृदयकी गंभीरतासे समुद्रके और ऊँचे दर्जेकी चतुराईसे श्रेष्ठ विद्याधरके समान था। उसे जिनेंद्र भगवानके शासनसरोवरका राजहंस, मुनीन्द्रोंके चरणकमलका भ्रमर, संपूर्णशास्त्रसमुद्रका मगर, स्त्रियोंके नेत्रसमुद्रोंके लिए चंद्रमा और विद्वज्जनोंका वल्लभ समझना चाहिए। वह ऐसा शृंगार किया करता था, जो सरस और साररूप हो। उसका

---

* देखो जैनसिद्धान्तभास्कर, किरण ४, पृ० १०३।

+ इससे मालूम होता है कि पहले नागर जातिके लोग भी जैनधर्मको पालन करते थे, परतु आज कल उनमें जैनधर्मका अभाव है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चरित उदार तथा मूर्ति, सुभग और सौम्य थी। विलासिनीयें (वेश्यायें?) उसके चरणोंमें आकर नम्रीभूत हुआ करती थीं। बड़े भाईका स्वर्गवास हो जानेके कारण कुलरथका संपूर्ण भार अकेले इस भूषणके सिर पर पड़ा। भूषणने उसे बड़ी शांति और धैर्यके साथ उठाया। अपनी स्थिरमति और महा दृढताके बलसे उसने अपने कुलरथको गुरुतर विपत्तिके गढ़ेसे निकाला, जिसमें वह उस समय फँसा हुआ था, और उसे विभूतिगिरिके शिखर पर पहुँचाया। भूषणके लक्ष्मी और सीली नामकी दो स्त्रियाँ थीं और वे दोनों ही पतिव्रता तथा चारित्रगुणसे युक्त थीं। सीली नामकी स्त्रीसे भूषणके शांति आदि पुत्र उत्पन्न हुए। भूषणका छोटाभाई अर्थात् आलोकका तीसरा पुत्र 'लल्लाक' हमेशा देवपूजामें तत्पर और अपने भाई भूषणकी आज्ञाका पालन करनेमें प्रवृत्त रहता था। भूषणके बड़े भाई पाहुकके 'सीउका' नामकी स्त्रीसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम 'अम्बर' था।

२२ वें पद्यमें लिखा है कि भूषणने, आयुको तप्त-लोहे पर पड़े हुए छोटेसे जलबिन्दुके समान नश्वर विचारकर, लक्ष्मीकी स्थितिको हाथीके कान समान अति चंचल देखकर और शास्त्रानुसार यश तथा श्रेय (धर्म) को स्थिरतर जानकर पृथ्वीका भूषण यह मनोहर जिनमंदिर बनवाया है। इसी जिनमंदिरसे सम्बन्ध रखनेवाला प्रकृत शिलालेख है। इस शिलालेखमें कुल ३० पद्य हैं, जिनमेंसे पहला मंगलाचरणका पद्य और चौथे पद्यसे प्रारंभ करके १९ वें पद्यतक १६ पद्य अर्थात् कुल १७ पद्य 'कटुक' नामके किसी पंडितके बनाये हुए हैं। शेष पद्योंकी रचना 'भादुक' नामके किसी ब्राह्मण द्वारा हुई है जो भाइल्लका पौत्र और श्रीसावड नामके द्विजका पुत्र था। उत्कीर्ण होनेके लिए इस लेखकी कापी बालभवंशी एक कायस्थने लिखी थी जिसका नाम 'वासव' और जिसके पिताका नाम राजपाल था। वासव उक्त विजयराज नामक राजाका सान्धिविग्रहिक अर्थात् फॉरेन सैक्रेटरी था। शिलालेखके अन्तिम पद्यमें इस कीर्ति (मंदिर) के चिर स्थिर रहनेका आशीर्वाद देकर उसके बाद, गद्यमें, 'सूमाक' नामके विज्ञानिक (शिल्पी) द्वारा इस शिलालेखके उत्कीर्ण होनेका उल्लेख किया है।

इसके बाद 'मंगलं महाश्रीः' लिखकर लेखकी समाप्तिका एक चिह्न बनाया गया है। और फिर २७ वीं पंक्तिसे प्रारंभ करके ३१ वीं पंक्ति तक आत्मानुशासन ग्रंथके कुछ पद्य उत्कीर्ण किये गये हैं। इन पद्योंमेंसे 'लक्ष्मीनिवासनिलयं' इत्यादि चार पद्य आत्मानुशासनके प्रारंभिक पद्य हैं और उनपर नम्बर भी उसी क्रमसे डाले गये हैं। शेष पद्यों पर क्रमशः ६५, ६८, ६९ और ७० नम्बर पड़े हुए हैं। ७१ वें पद्यके दो तीन अक्षर कम हैं और शिला टूट गई मालूम होती है। ये पिछले पाँचों पद्य वे हैं जो सनातनजैनग्रंथमालामें छपे हुए आत्मानुशासनमें क्रमशः नं० ६६,६९,७०,७१, और ७२ पर दर्ज हैं। नहीं मालूम आत्मानुशासनके ये सब पद्य उसी समय उत्कीर्ण हुए हैं या पीछेसे खोदे गये हैं। क्योंकि मूल शिलालेखसे इनका कोई सम्बंध नहीं है। शिलालेखको प्रत्यक्ष देखने अथवा उसका फोटू आदि प्राप्त होने पर इस विषयका निर्णय किया जा सकता है। अस्तु। आत्मानुशासनके इन पद्योंको छोड़कर शेष पूरा शिलालेख, पाठकोंके अवलोकनार्थ, नीचे दिया जाता है। जहाँ तक मुझे मालूम है यह शिलालेख, अभीतक प्रकाशित नहीं हुआ। भारतीय पुरातत्त्वविभाग (पश्चिमी सर्किल) के सुपरिंटेंडेंट श्रीयुत डी. आर. भांडारकर महोदयने इस शिलालेखको, प्रकाशित करनेके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लिए, श्वे० साधु श्रीयुत मुनि जिनविजयजीको दिया था। और मुनि जिनविजयजीके पाससे मुझे इसकी प्राप्ति हुई है। अतः मैं इस कृपाके लिए उक्त दोनों महानुभावोंका हृदयसे आभार मानता हूँ।

मूल लेख।

१–द० ॥ ॐनमो वीतरागाय। स जयतु जिनभानुर्भव्यराजीवराजीजनितवरविकाशो व्यक्तलोकप्रकाशः। परसमयतमोभिर्न स्थितं यत्पुरस्तात्क्षणमपि चपलासद्वादिखद्योतकैश्च ॥ १ ॥ छ ॥

२–आसीच्छ्रीपरमारवंशजनितः श्रीमंडलीकाभिधः कन्हस्य ध्वजिनीपतेर्निधनकृच्छ्रीसिंधराजस्य च। जज्ञे कीर्तिलतालवालक इतश्चामुंडराजो नृपो योऽवंतिप्रभुसाधनानि बहुशो हंतिस्म

३–देशे स्थलौ ॥ २ ॥ श्रीविजयराजनामा तस्य सुतो जयति मति (जगति) विततयशाः। सुभगो जितारिवर्गो गुणरत्नपयोनिधिः शूरः ॥ ३ ॥ देशेऽस्य पत्तनवरं तलपाटकाख्यं पण्याङ्गनाजनजिता–

४–मरसुंदरीकम्। अस्ति प्रशस्तसुरमंदिरवैजयन्तीविस्ताररुद्धदिननाथकरप्रचारं ॥ ४ ॥ तस्मिन्नागरवंशशेखरमणिर्निःशेषशास्त्राम्बुधिर्जैनेन्द्रागमवासनारससुधाविद्धास्थिमज्जाभवत्।

५–श्रीमानंवरसंज्ञकः कलिबहिर्भूतो भिषग्ग्रा (ग्ग्रा) मणीर्गार्हस्थे (स्थ्ये) पि निकुंचिताक्षप्रसरो देशव्रतालंकृतः ॥ ५ ॥ यस्याव [श्य] क [क]र्म्मनिष्ठितमतेः श्रद्धा वनांते मवशंतेवासिवदाहितांजलिपुटा (॥)

६–श्रोसः (षः) कृतोपासनाः। यस्यानन्यसमानदर्शनगुणैरन्तश्चमत्कारिता शुश्रूषां विदधे सुतेव सततं देवी च चक्रेश्वरी ॥ ६ ॥ पापाकस्तस्य सूनुः समजनि जनितानेकभव्यप्रमोदः प्रादुर्भू–

७–तप्रभूतप्रविमलधिषणः पारदृश्वा श्रुतानां [।] सर्वायुर्वेदवेदी विदितसकलरुक्कान्तलोकानुकंपो निर्णीताशेषदोषप्रकृतिरपगदस्तत्प्रतीकारसारः ॥ ७ ॥ तस्य पुत्रास्त्रयोऽभूवन्भूरिशा–

८–स्त्रविशारदाः। आलोकः साहसाख्यश्चलल्लुकाख्यः परोनुजः ॥ ८ ॥ यस्तत्राद्यः सहजविशदप्रज्ञया भासमानः स्वांतादर्शस्फुरितसकलैतिह्यतत्त्वार्थसारः। संवेगादिस्फुटतरगुणव्य–

९–क्त सम्यक्प्रभावः तैस्तैर्ज्ञानप्रभृतिभिरपि स्वोपयोगी कृतश्रीः ॥ ९ ॥ आधा [रो] यः स्वकुलसमितेः साधुवर्गस्य चाभूद्धर्मे शीलं सकलजनताह्लादिरूपं च काये। पात्रीभूतः कृतयतिधृतीनां

१०–श्रुतानां श्रियां च सानंदानां धुरमुरुवहद्ध्योगिनां योगिनां च ॥ १० ॥ यो माथुरान्वयनभस्तलतिग्मभानोर्व्याख्यानरंजितसमस्तसभाजनस्य। श्रीच्छत्रसेनसुगुरोश्चरणारविंदसे–

११–वापरो भवदनन्यमनाः सदैव ॥ ११ ॥ तस्य प्रशस्तामलशीलवत्यां हेलाभिधायां वर धर्मपत्न्यां। त्रयो बभूवुस्तनया नयाढ्या विवेकवंतो भुवि रत्नभूताः ॥ १२ ॥ अभवदमल—

१२–बोधः पाहुकस्तत्र पूर्वः कृतगुरुजनभक्तिः सत्कुशाग्रीयबुद्धिः। जिनवचसि यदीयप्रश्नजाले विशाले गणभृदपि विमुग्धेत्कैव वार्ता परस्य ॥ १३ ॥ करणचरणरूपानेक—

१३–शास्त्रप्रवीणः परिहृतविषयार्थो वामतीर्थप्र[वृत्तः] । ग(श)मनियमित–

चित्तो जातवैराग्यभावः कलिकलिलवि-मुक्तोपासकीयप्र(व्र)ताढ्यः ॥ १४ ॥ कनिष्ठस्तस्याभूद्भुवनविदितो भूषण इति श्रियः पात्रं—

१४-कांतेः कुलगृहमुमायाश्च वसतिः। सरस्वत्याः क्रीडागिरिरमलबुद्धेरतिवनं क्षमावल्याः कंदः प्रविततकृपायाश्च निलयः ॥ १५ ॥ स्मरः (रो) सौ रूपेण प्रबलसु [भ] गत्वेन गणभृत् कुबेरः संप (॥)

१५ त्या समधिकाविवेकेन धिषणः। महोन्नत्या मेरुर्जलनिधिरगाधेन मनसा विदग्धत्वेनोच्चैर्य इह वरविद्याधर इव ॥ १६ ॥ जैनेन्द्रशासनसरोवरराजहंसो मौनींद्रपादकमलद्वय—

१६ चंचरीकः। निःशेषशास्त्रनिवहोदकनाथनक्रः। सीमंतिनीनयनकैरवचारुचंद्रः॥ ॥ १७ ॥ विदग्धजनवल्लभः सरससारशृंगारवानुदारचरितश्च यः सुभगसौम्यमूर्तिः सुधीः। प्रसाद—

१७-नपरा नमद्वरविलासिनीकुन्तलव्यपस्तपदपंकजद्वितयरेणुरत्युन्नतः ॥ १८ ॥ प्रथमधवलप्राये मेघे गतेपि दिवं पुनः। कुलरथभरो येनैकेनाप्यसंभ्रममुद्धृतः। गुरुतरविप—

१८-द्वर्त्तग्रावग्रहादुदनादिव (तारि च) स्थिरमतिमहास्थाम्ना नीतो विभूतिगिरेः शिरः ॥ १८ ॥ द्वे भार्ये भूषणस्य स्तः लक्ष्मी सालीति विश्रुते। पतिव्रतत्वसंयुक्ते चारित्रगुणभूषिते ॥ २० ॥ स सी—

१९-लिकायामुदपादि पुत्रान्सन्तानयोग्यान् गुरुदेवभक्तः। आलोकसाधारणशांतिमुख्यान्स्वबंधुचित्ताब्जविकाशभानून् ॥ २१ ॥ आयुस्ततमर्हीद्रसारनिहितस्तोकाम्बुवन्नश्वरं

२०-संचिंत्यद्विपकर्णचंचलतरां लक्ष्म्याश्च दृष्ट्वा स्थितिं। ज्ञात्वा शास्त्रसुनिश्चयात् स्थिरतरे नूनं यशः श्रेयसी तेनाकारि मनोहरं जिनगृहं भूमेरिदं भूषणम् ॥ २२ ॥ भूषणस्य क—

२१-निष्ठो यो लल्लाक इति विश्रुतः। देवपूजापरो नित्यं भ्रातुरादेशकृत्सदा ॥ २३ ॥ ज्येष्ठो बाहुकनामा यः सीउकायामजीजनत् शुभलक्षणसंयुक्तं पुत्रमम्बटसंज्ञकम् ॥ २४ ॥

२२-वर्षसहस्रे याते षट्षष्ठ्युत्तरशतेन संयुक्ते। विक्रमभानोः काले स्थलिविषयमवति सति विजयराजे ॥ २५ ॥ विक्रम संवत् ११६६ वैशाखसुदि ३ सोमे वृषभनाथस्य प्रतिष्ठा

२३-श्रीवृषभनाथधाम्नः प्रतिष्ठितं भूषणेन बिम्बमिदं। उच्छूणकनगरेस्मिन्निह जगतौ वृषभनाथस्य ॥ २६ ॥ युगलं ॥ ० ॥ तुर्यवृत्तात्समारभ्य वृत्तान्येतानि

२४-षोडश। आद्यवृत्तेन युक्तानि कृतवान्कलुको बुधः ॥ २७ ॥ भाइल्लोवंशेभूत्तज्ज्ञः श्रीसावडो द्विजः। तत्सूनोर्भादुकस्येयं निःशेषाथ परा कृतिः ॥ २५ ॥ वालभान्वयकायस्थराजपालस्य

२५-सूनुना। संधिविग्रहसंस्थेन लिखिता वासवेन वै ॥ २९ ॥ यावद्रावणरामयोः सुचरितं भूमौ जनैर्गीयते [।] यावद्विष्णुपदीजलं प्रवहति व्योम्न्यस्ति यावच्छशी। अर्ह-

२६-द्वक्त्रविनिर्गतं श्रवणकैः यावस्तु[च्छ्रु]तं श्रूयते तावत्कीर्तिरियं चिराय जयतात्संस्तूयमाना जनैः ॥ ३० ॥ उत्कीर्णा विज्ञानिकसूमाकेन ॥ ० ॥ मंगलं महाश्रीः ॥ ० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोम्मटस्वामीकी संपत्तिका गिरवी रक्खा जाना।

[ले०-श्रीयुत बाबू जुगलकिशोर मुख्तार।]

जो लोग भगवान्की पूजा करके आजीविका करते हैं—पूजनके उपलक्षमें वेतन लेते अथवा दक्षिणा, चढ़ावा या उपहार ग्रहण करते हैं—उनमें प्रायः धर्मका भाव बहुत ही कम पाया जाता है। यही वजह है कि समय समय पर उनके द्वारा तीर्थादिकों पर अनेक अत्याचार भी हुआ करते हैं। वे लोग जाहिरमें अपने अंगोंको चटका मटका कर बहुत कुछ भक्तिका भाव दिखलाते हैं और यात्रियों पर उस देव तथा तीर्थके गुणोंका जरूरतसे अधिक बखान भी किया करते हैं; परन्तु वास्तवमें उनके हृदय देवभक्ति तथा तीर्थभक्तिके भावसे प्रायः शून्य होते हैं। उनका असली देव और तीर्थ टका होता है। वे उसीकी उपासना और उसीकी प्राप्तिके लिए सब कुछ करते हैं। यदि उनको अवसर मिले तो वे उस देवतीर्थकी सम्पत्तिको भी हड़प जानेमें आनाकानी नहीं करते! ऐसे लोगोंके हृदयके क्षुद्र भावों और दीनताभरी याचनाओंको देखकर चित्तको बहुत ही दुःख होता है और समाजकी धार्मिक रुचिपर दो आँसू बहाये विना नहीं रहा जाता। यह दशा केवल हिन्दू तीर्थोंके पंडे पुजारियोंहीकी नहीं; बल्कि जैनियोंके बहुतसे तीर्थोंके पंडे पुजारियोंकी भी प्रायः ऐसी ही अवस्था देखनेमें आती है। पिछली श्रवणबेल्गोलसम्बन्धी मेरी तीन महीनेकी यात्रामें मुझे इस विषयका बहुत कुछ अनुभव प्राप्त हुआ है। उस समय तारंगा तीर्थका पुजारी अपने फटे पुराने कपड़ोंको दिखलाकर यात्रियोंसे भीख माँगता था! श्रवणबेल्गोलमें, जिसे जैनबद्री भी कहते हैं, ३६ घर पुजारियोंके हैं। परंतु यदि वहाँके मंदिरोंकी हालतको देखा जाय तो दांतोंतले अंगुली दबानी पड़ती है। जगह जगह कूड़ा कर्कटका ढेर लगा हुआ है। बहुतसे मंदिरोंके गर्भगृहोंमेंसे इतनी दुर्गंधि आती है कि वहाँ ठहरा नहीं जाता! नगरमें और पर्वतों पर अधिकांश मंदिर ऐसे हैं जिनमें नित्य क्या, महिनों और वर्षोंमें भी प्रतिमाओंका प्रक्षालन नहीं होता। आठ दिन ठहरने पर भी, पुजारियोंकी कृपासे, नगरके दो तीन मंदिर दर्शनोंके लिए खुल नहीं सके। इतने पर भी "पूजन कब कराओगे, गोम्मटस्वामीका खास पुजारी मैं हूँ, दान या इनाम मुझे ही देना, हम आपकी आशा लगाये हुए हैं," इत्यादि दीन वचन पुजारियोंके मुखसे बराबर सुननेमें आते थे। इससे पंडे पुजारियोंकी धर्मनिष्ठाका बहुत कुछ अनुभव हो सकता है। यह धर्मनिष्ठा आजकलके पंडेपुजारियोंहीकी नहीं बल्कि इससे कई शताब्दियों पहलेके पंडे पुजारियोंकी भी प्रायः ऐसी ही धर्मनिष्ठा पाई जाती है, जिसका अनुभव पाठकोंको सिर्फ इतने परसे ही हो जायगा कि इन पुजारियोंके पूर्वजोंने श्रवणबेल्गोलके गोम्मटस्वामीकी सम्पत्तिको एक समय महाजनोंके पास गिरवी अर्थात् रहन (Mortgage) रख दिया था! लगभग तीनसौ वर्ष हुए जब शक संवत् १५५६ आषाढ सुदी १३ शनिवारके दिन मैसूरपट्टनाधीश महाराज चामराज वोडेयर अप्पके सदुद्योगसे ये सब रहन छूटे हैं। श्रवणबेल्गोलमें इस विषयके दो लेख हैं, एक नं० १४० जो ताम्रपत्रोंपर लिखा हुआ मठमें मौजूद है और दूसरा नं० ८४ जो एक मंडपमें शिलापर उत्कीर्ण है। वे दोनों लेख कनडी भाषामें हैं। पाठकोंके ज्ञानार्थ उनका भावार्थ * नीचे प्रकाशित किया जाता है:—

* यह भावार्थ मिस्टर बी. लेविस राइस साहबके अँगरेजी अनुवाद परसे लिखा गया है। कहीं कहीं चामराजके विशेषणादि सम्बंधमें मूलसे भी सहायता ली गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नं० १४० ।

श्रीस्वस्ति । शालिवाहन शक १५५६, भाव संवत्सरमें, आषाढ सुदी १३ को, शनिवारके दिन, ब्रह्मयोगमें—

श्रीमन्हाराजाधिराज, राजपरमेश्वर, अरिरायमस्तकशूल, शरणागतवज्रपंजर, परनारीसहोदर, सत्यागपराक्रममुद्रामुद्रित, भुवनवल्लभ, सुवर्णकलशस्थापनाचार्य, धर्मचक्रेश्वर, मैसूरपट्टनाधीश्वर चामराज वोडेयर अप्प—

पुजारियोंने, अपनी अनेक आपत्तियोंके कारण, बेल्गुलके गोम्मटनाथ स्वामीकी पूजाके लिये दिये हुए उपहारों (दानकी हुई ग्रामादिक संपत्ति) को वणिग्गृहस्थोंके पास रहन (बंधक) कर दिया था,– और रहनदार लोग (बंधकग्राही–Mortgagees) उन्हें हस्तगत किये हुए बहुत कालसे उनका उपभोग करते आरहे थे–

चामराज वोडेयर अप्पने, इस बातको मालूम करके, उन वणिग्गृहस्थोंको बुलाया जिनके पास रहन थे और जो संपत्तिका उपभोग कर रहे थे और कहा कि– "जो कर्ज़ेजात (ऋण) तुमने पुजारियोंको दिये हैं उन्हें हम दे देवेंगे और ऋणमुक्तता कर देवेंगे।"

इसपर उन वणिगृहस्थोंने ये शब्द कहे– "हम उन ऋणोंका, जो कि हमने पुजारियोंको दिये हैं, अपने पिताओं और माताओंके कल्याणार्थ, जलधारा डालते हुए दान करेंगे।"

उन सबके इस प्रकार कह चुकने पर,– वणिग्गृहस्थोंके हाथोंसे, गोम्मटनाथ स्वामीके सम्मुख, देव और गुरुकी साक्षीपूर्वक, यह कहते हुए कि–" जबतक सूर्य और चंद्रमा स्थित हैं तुम देवकी पूजा करो और सुखसे रहो–" यह धर्मशासन पुजारियोंको, ऋणमुक्तताके तौरपर, दिया गया।

बेल्गोलके पुजारियोंमें अगामी जो कोई उपहारोंको रहन रक्खेगा, या जो कोई उन पर रहन करना स्वीकार करेगा, वह धर्मबाह्य किया जायगा और उसका जमीन तथा जायदाद पर कुछ अधिकार नहीं होगा।

यदि कोई मनुष्य, इस विज्ञप्तिका उल्लंघन करके, रहन रक्खेगा या रहन स्वीकार करेगा, तो वे राजा जो इस राष्ट्र पर राज्य करेंगे इस देवके स्वत्वोंको पूर्वरीत्यानुसार सुरक्षित रक्खेंगे।

जो कोई राजा इस कर्त्तव्यसे अनभिज्ञ रहकर उपेक्षा धारण करेगा उसे वारणासीमें एक हजार गौओं और ब्राह्मणोंके वध करनेका पाप लगेगा।

इस प्रकार धर्मशासन लिखा गया और दिया गया। मंगलमहाश्री। श्री ॥ श्री ॥

नं० ८४।

श्रीशालिवाहन शक वर्ष १५५६, भाव संवत्सरमें, आषाढ सुदी १३ को, शनिवारके दिन ब्रह्म योगमें; श्रीमन्महाराजाधिराज, राजपरमेश्वर, मैसूरपट्टनाधीश्वर, षट्दर्शनधर्मस्थापनाचार्य, चामराज वोडेयर अप्प,—बेल्गोलके मंदिरकी जमीनें बहुत दिनोंसे रहन थीं, -उक्त चामराज वोडेयर अप्पने होसवोललुकेम्पप्पके पुत्र चन्नण्ण बेल्गुलपायि सेट्टिके पुत्रों चिक्कण्ण और जिगपायि सेट्टि नामके रहनदारों तथा दूसरे रहनदारोंको बुलाकर, कहा कि "मैं तुम्हारे रहनका रुपया अदा कर दूँगा।"

इसपर चन्नण्ण, चिक्कण्ण, जिगपायि-सेट्टि मुद्दण्ण, अज्जण्णन-पदुमप्पन्नका पुत्र पण्डेण्ण, पदुमरसप्प दोड्डण्ण, पंचवाण कविका पुत्र बोम्मप्प, बोम्मणकवि, विजयण्ण, गुम्मण्ण, चारुकीर्तिनागप्प, बेडदय्य, बोम्मि-सेट्टि, होसहल्लिय रायण्ण, परियण्ण गौड, वैरसेट्टि, बैरण्ण, वीरप्प, नामके इन सब वणिकों और क्षेत्रपतियोंने, अपने पिताओं और माताओंके कल्याणार्थ, गोम्मट स्वामीकी मौजूदगीमें और अपने गुरु चारुकीर्ति पंडित देवके सन्मुख, जलधारा डालते हुए बंधकग्राहियोंके (?) मंदिरनिरीक्षकोंको रहननामे (Motgage bonds) दे दिये और यह शिलाशासन रहनोंके छूटनेका लिख दिया। (शाप—काशी रामेश्वरमें एक हजार गोओं और ब्राह्मणोंके मारनेका पाप)। श्री श्री।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुछ इधर उधरकीं ।

पिछले अंकमें मैंने लिखा था कि गोलमाल-कारिणी सभाकी दूसरी बैठककी रिपोर्ट शीघ्र ही भेजूँगा; परन्तु कार्यवश दूसरी बैठक अबतक नहीं हुई और इस कारण रिपोर्ट भी तैयार न हो सकी । सोचा था कि चलो छुट्टी हुई, अबकी बार कुछ न लिखना पड़ेगा और 'आराममें खलल' न पड़ेगा; परंतु बीचमें ही हितैषीसम्पादकका पत्र आ पहुँचा जिसमें लिखा था कि इस अंकके लिए कुछ न कुछ अवश्य भेजिए । आपके लेखोंको पढ़नेके लिए लोग बहुत ही उत्कण्ठित हो रहे हैं । यदि आपके लेख न आयँगे तो जैनहितैषीकी ग्राहक-संख्या एकदम घट जायगी । मेरे लेखोंकी इतनी कदर ! मैं फूलकर कुप्पा हो गया । साथ ही हितैषीके प्रति करुणाका भी उद्रेक हो आया । प्रान्तिक सभाने उसके ग्राहक घटानेकी कोशिश की ही है; यदि मैं भी लेख न भेजूँगा, तो बेचारा मर जायगा ! यह सोचकर मैंने अपनी सुकोमल कलमको सँभाला । क्या लिखूँ ? हृदयने उत्तर दिया, अरे तुम तो जो भी कुछ लिखोगे, उस पर लोग लट्टू हो जायँगे । तुम्हारी लेखनीसे अमृत और विनोद एक साथ झरते हैं । फिर यह चिन्ता क्यों करते हो ? मैंने कलम चलाना शुरू कर दिया ।

१

मैं कल रातको लेटे लेटे 'जैनमित्र' का पाठ कर रहा था । उसमें यह दुःसंवाद पढ़कर कि 'कलकत्तेके जौहरी राय बद्रीदास बहादुरका स्वर्गवास हो गया' मैं चौंक पड़ा । साधारण लोगोंके लिए यह कोई चौंकनेकी बात न थी; परन्तु मैं शास्त्री ठहरा, तर्कशास्त्रका पण्डित ठहरा; मेरे मस्तकमें इसके साथ ही अनेक बातें एक साथ चक्कर लगा गईं । मैंने प्रश्न किया कि तीर्थक्षेत्रोंके कई मुकद्दमोंमें वे श्वेताम्बरोंकी ओरसे अगुआ रह चुके हैं, कहीं इसी लिए तो इनका स्वर्गवास नहीं हुआ है ? जिस समय सेठ परमेष्ठीदासजी और बाबू धन्नूलालजी अटर्नीकी मृत्यु हुई थी, उस समय भी मेरे तार्किक मस्तकमें यही प्रश्न उठा था । इस समय दोनों प्रश्नोंका मिलान हो गया; साथ ही इसीके सम्बन्धकी और भी कई मृत्युओंका स्मरण हो आया । मैं आँखें बन्द करके विचार करने लगा । थोड़ी ही देरमें मैंने एक नई बातका अविष्कार कर डाला । मुझे निश्चय हो गया कि दिगम्बर-श्वेताम्बरोंकी लड़ाईसे इन्द्र महाराजका आसन डोल गया है ! भाई-भाईके इस भयंकर द्वेषसे इन्द्रका आसन अभी तक न डोला था यही आश्चर्यकी बात थी ! देवराजने पहले सोचा था कि दोनों सम्प्रदायोंमें शिक्षाका प्रचार हो रहा है इस लिए ये मामले स्वयं ही ठंडे हो जायँगे; परन्तु जब उन्होंने देखा कि 'मरज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की' तब स्वयं बीचमें पड़कर निबटेरा कर देनेका निश्चय किया । उनके प्राइवेट सेक्रेटरीने राय दी कि, इस काममें जल्दी करना ठीक नहीं । दोनों सम्प्रदायोंके मुखियोंसे धीरे धीरे सब हाल मालूम कर लो और तब बीचमें पड़कर सन्धि करानेका यत्न करो । पहले दिगम्बर सम्प्रदायके अगुए बुलाये गये । इसके लिए तीर्थक्षेत्र कमेटीके कार्यकर्त्ता खास तौरसे पसन्द किये गये; क्यों कि वे ही इन मामलोंके अधिक जानकार थे । अबतक स्वर्गीय सेठ चुन्नीलाल जवेरचन्द, दानवीर सेठ माणिकचंदजी, सेठ परमेष्ठीदासजी और बाबू धन्नूलालजी अटर्नी आदि कई दिगम्बरी अगुओंकी मुलाकात देवराज ले चुके हैं । उनके बाद श्वेताम्बरी अगुओंका नम्बर आया है । सबसे पहले शायद बाबू बद्रीदासजी ही बुलाये गये हैं । श्वेताम्बर समाजसे मैं अधिक परिचित नहीं, संभव है उनके यहाँसे और भी दो चार आदमी जा चुके हों ।

कितनेही गये हों, पर यह निश्चय है कि देवराज इस झगड़ेकी जाँच कर रहे हैं और अभी यह जाँच और भी कुछ समयतक जारी रहेगी। आगे और कौन कौन सज्जन कब कब बुलाये जावेंगे यह निश्चय नहीं; पर बुलाये अवश्य जावेंगे। यह भी निश्चय है कि अब देवराज इन भाई-भाईयोंके युद्धको बहुत समयतक न चलने देंगे। यूरोपके महायुद्धको शीघ्र समाप्त करनेके लिए जिस तरह इटलीके पोप प्रयत्न कर रहे हैं, उसी तरह जैनोंके इस युद्धको मिटानेके लिए सौधर्म स्वर्गके इन्द्रदेव यत्न कर रहे हैं। मेरा खयाल है कि पोपका प्रयत्न भले ही निष्फल चला जाय, पर इन्द्रका यत्न सफल हुए बिना न रहेगा। क्योंकि यूरोपके राष्ट्रोंने धर्मको छोड़ दिया है। पर जैन समाजके मुखियोंमें अभीतक धर्म बना हुआ है। वे इन्द्रकी बातको कभी न टालेंगे।

यदि मेरा यह अनुमान सच हो कि देवराज मुखियोंको बुला बुलाकर उनसे तीर्थोंके झगड़ोंके विषयमें पूछ ताछ कर रहे हैं और सच होनेमें कमसे कम मुझे तो कोई सन्देह नहीं है, क्यों कि मेरा कोई अनुमान झूठ नहीं होता, तो फिर अब आगे जो लोग जावें उन्हें सब तरहसे तैयार होकर जाना चाहिए। अपनी अपनी प्राचीनता सिद्ध करनेके लिए नये पुराने ग्रन्थोंका और पण्डितों तथा वकीलोंको अवश्य ही साथमें लिये जाना चाहिए। क्यों कि न वहाँ मर्त्यलोकके ग्रन्थोंका संग्रह है और न यहाँ जैसे पण्डित और वकील हैं।

२

पिछले सप्ताह मुझे एक पण्डितजीसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आपसे मिलकर मेरी तबीयत बहुत प्रसन्न हुई। क्योंकि आपने अपनी भीतरी बाहरी सभी बातें जी खोलकर कह दीं। अपने जो कुछ कहा वह आपके ही शब्दोंमें इस प्रकार है:—

"मेरे विचारोंमें सदा परिवर्तन होता है। आजसे १० वर्ष पहले मैं कैसा था, इसको सोचकर स्वयं मुझे ही आश्चर्य होता है। मालूम नहीं आगे इन वर्तमानके विचारोंमें भी कितना परिवर्तन हो जायगा। जब कभी मैं हिन्दी जैनगजटके वृद्ध सम्पादककी कूटस्थनित्यतापर विचार करता हूँ तब अवाक् हो जाता हूँ। वे इस बीसवीं सदीमें भी सोलहवीं सदीके स्वप्न देखा करते हैं और चाहते हैं कि मेरे ही समान सारी दुनिया हो जाय। किसीके विचारोंमें जरासा परिवर्तन देखा कि चटसे पुराने पत्रोंकी फाइलोंमेंसे कुछ टटोलकर पूर्वापरविरोध सिद्ध कर दिया! गरज यह कि मैं परिवर्तनशील संसारका परिवर्तनशील मनुष्य हूँ। वर्तमानमें कुछ समयसे मैं इस सिद्धान्तका माननेवाला बन गया हूँ:—

किस किसकी याद कीजिए,
किस किसको रोइए।
आराम बड़ी चीज है,
मुँह ढँकके सोइए॥

पहले मैं जैनसमाजके लिए बहुत कुछ रोया गाया हूँ। बीसों लेख लिखे हैं और व्याख्यानादि दिये हैं; पर अब मुझे अपनी उस मूर्खता पर हँसी आती है और पश्चात्ताप इस बातका होता है कि हाय मैंने आरामसे सोनेका वह अमूल्य समय व्यर्थ क्यों खो दिया! जैनसमाज जहन्नुममें चला जाय, कल मरता था सो आज मर जाय, मुझे उससे मतलब? वह हमारी क्या चिन्ता करता है जो हम उसकी करें? उसकी चिन्ता करनेवालोंको उसकी ओरसे जो कुछ मिलता है, सो किसीसे छुपा नहीं है। जहाँ कृतघ्नताकी गिनती पापमें नहीं है, उस समाजमें रहना भी पाप है। मेरा यह 'आराम बड़ी चीज है' का सिद्धान्त यह मत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समझिए कि मेरे जैसे दश पाँच आदमियों- में ही माना जाता है। नहीं, इसका प्रचार खूब तेजीसे हो रहा है। यह बात दूसरी है कि जिन परिस्थितियोंके कारण हताश होकर मैं इसका अनुयायी बना हूँ, और लोग उनके कारण नहीं बने होंगे। वे आरामके लिए ही, आरामके भक्त हुए हैं और इस लिए इसके सच्चे उपासक उन्हींको समझना चाहिए। बाबू लोगों- का सम्प्रदाय इस सिद्धान्तका खास भक्त है। जैनसमाजमें ग्रेज्युएटोंकी संख्या कई सौ है, पर देखते हैं कि उनमें प्रतिशत ९९ ‘ येन केन प्रकारेण ’ रुपया कमाकर दुनियाके मजे लूटने- वाले ही हैं। वे तत्त्वज्ञ हैं, जानते हैं कि इस जड- समाजके लिए रोना—कलपना किसी प्राचीन पर्वत या पाषाणसमूहके लिए रोना-झींकना है। इसलिए मजेसे पैर पसार कर सोते हैं। इधर मेरे भाई पण्डित जन भी इसके कम भक्त नहीं है। वे जैनपाठशालाओं और विद्यालयोंमें रहकर ही इस तत्त्वसे परिचित हो जाते हैं। वे बाहरसे चाहे जितने ‘ बगुलाभगत ’ बनें, पर अन्तरंगमें उनके यही तत्त्व रम रहा है। उनमें शायद ही दो चार अभागे ऐसे होंगे जो दिनमें कमसे कम दो घण्टे न सोते हों। विद्यालयोंसे नि- कलते ही वे पेन्शनके हकदार हो जाते हैं। अपनी अपनी श्रीमतियोंकी सेवा करना और दो तीन घंटे तर्जन गर्जनके साथ लड़कोंको कुछ रटा देना, या भोले भक्तोंको शास्त्र सुना देना, बस इससे अधिक परिश्रम वे नहीं कर सकते। यदि कहीं काम अधिक हुआ, तो चटसे वह जगह छोड़ कर दूसरी कोई पाठशाला तलाश कर ली। उनका पठन पाठन तो पण्डित होनेके साथ ही समाप्त हो जाता है। मैं खुश हूँ कि मेरा यह सिद्धान्त सर्वमान्य बनता जाता है। आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मुझे आशा है कि आप भी कुछ समयमें मेरे साथी बन जायँगे और इन लिखने पढ़नेकी झंझटोंसे छुट्टी पा जायँगे। ”

(३)

रूसमें बड़ी भारी अव्यवस्था हो रही है। सेनापति, मंत्रि मण्डळ, प्रजावर्ग आदिमें घोर मतभेद हो रहा है। कोई किसीकी नहीं सुनता। सब अपने अपने अधिकारोंको बढ़ानेकी फिक्र- में हैं। शत्रुको यह खासा मौका मिल गया है। वह आपनी सारी शक्तिको लगाकर भीतरी भागमें घुसता जा रहा है। हिन्दी जैनगजटके स्टाफमें भी इसी तरहकी अव्यवस्थाके समाचार मिले हैं। सम्पादक और प्रकाशकमें मनमोटाव हो गया है। प्रकाशकने अपने शत्रुओंपर ऐसे वार किये हैं, जिन्हें सम्पादक अपने युद्धशास्त्रके नियमोंसे विरुद्ध समझते हैं। उधर महासभाके मंत्री भी उनसे टेढ़ी चाल चल रहे हैं। इससे तंग आकर पुराने पक्षके वृद्ध सेनापति पं० रघु- नाथदासजीने अपना इस्तीफा पेश कर दिया है। इतनी खैर है कि वे महासभाके अधिवेशन तक अपना काम करते रहेंगे, पर उनकी इच्छाके विरुद्ध शत्रुपर जो वार किये जायँगे, उनके ठीक निशाने पर लगने न लगनेके वे जिम्मेवार न होंगे। इस आपसकी फूटसे भय है कि कहीं नया दल या शत्रु पक्ष कुछ अधिक लाभ न उठा लेवे। यदि इस समय वह अपनी ‘ तरो ताजा ’ ताकतको काममें लायगा, तो आश्चर्य नहीं जो वह मैदान मार ले जाय। सावधान !

—श्रीगड़बड़ानन्द शास्त्री।

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

रानी सारन्धा ।

(लेखक,-श्रीयुत प्रेमचन्दजी ।)

[१]

अँधेरी रातके सन्नाटेमें धसान नदी चटानोंसे टकराती हुई ऐसी सुहावनी मालूम होती थी जैसे घुमुर घुमर करती हुई चक्कियाँ। नदीके दाहिने तट पर एक टीला है। उस पर एक पुराना दुर्ग बना हुआ है जिसको जंगली वृक्षोंने घेर रक्खा है। टीलेके पूर्वकी ओर एक छोटासा गाँव है। यह गढ़ी और गाँव दोनों एक बुंदेला सरदारके कीर्तिचिह्न हैं। शताब्दियाँ व्यतीत हो गईं, बुन्देलखण्डमें कितने ही राज्योंका उदय और अस्त हुआ, मुसलमान आये और गये, बुंदेला राजे उठे और गिरे, कोई गाँव, कोई इलाका, ऐसा न था जो इन दुर्व्यवस्थाओंसे पीड़ित न हो, मगर इस दुर्ग पर किसी शत्रुकी विजय-पताका न लहराई, और इस गाँवमें किसी विद्रोहका पदार्पण न हुआ। यह उसका सौभाग्य था।

अनिरुद्धसिंह वीर राजपूत था। वह जमाना ही ऐसा था जब प्राणीमात्रको अपने बाहुबल और पराक्रमहीका भरोसा था। एक ओर मुसलमान सेनायें पैर जमाये खड़ी रहती थीं, दूसरी ओर बलवान् राजे अपने निर्बल भाइयोंके गले घोटने पर तत्पर रहते थे। अनिरुद्धसिंहके पास सवारों और पियादोंका एक छोटासा, मगर सजीव, दल था। इसीसे वह अपने कुलकी और मर्य्यादाकी रक्षा किया करता था। उसे कभी चैनसे बैठना नसीब न होता था। तीन वर्ष पहले उसका विवाह शीतलादेवीसे हुआ, मगर अनिरुद्ध विहारके दिन और विलासकी रातें पहाड़ोंमें काटता था और शीतला उसके जानकी खैर मनानेमें। वह कितनी वार पतिसे अनुरोध कर चुकी थी, कितनी वार उसके पैरों पर गिर कर रोई थी, कि तुम मेरी आँखोंसे दूर न हो, मुझे हरिद्वार ले चलो, मुझे तुम्हारे साथ वनवास अच्छा है, यह वियोग अब नहीं सहा जाता। उसने प्यारसे कहा, जिद्दसे कहा, विनय की, मगर अनिरुद्ध बुंदेला था। शीतला अपने किसी हथियारसे उसे परास्त न कर सकी।

[२]

अँधेरी रात थी। सारी दुनिया सोती थी, मगर तारे आकाश पर जागते थे। शीतला देवी पलङ्ग पर पड़ी करवटें बदल रही थी और उसकी नन्द सारंधा फर्श पर बैठी हुई मधुर स्वरसे गाती थीः—

विन रघुवीर कटत नहिं रैन।

शीतलाने कहा—जी न जलाओ। क्या तुम्हें भी नींद नहीं आती?

सारन्धा—तुम्हें लोरी सुना रही हूँ।

शीतला—मेरी आँखोंसे तो नींद लोप हो गई।

सारन्धा—किसीको ढूँढ़ने गई होगी।

इतनेमें द्वार खुला और एक गठे हुए बदनके रूपवान् पुरुषने भीतर प्रवेश किया। यह अनिरुद्ध था। उसके कपड़े भीगे हुए थे, और बदन पर कोई हथियार न था। शीतला चारपाईसे उतर कर जमीन पर बैठ गई।

सारन्धाने पूछा—भैया, यह कपड़े भीगे क्यों हैं?

अनिरुद्ध—नदी पैर कर आया हूँ।

सारन्धा—हथियार क्या हुए?

अनिरुद्ध—छिन गये।

सारन्धा—और साथके आदमी?

अनिरुद्ध—सबने वीरगति पाई।

शीतलाने दबी जबानसे कहा—"ईश्वरने ही कुशल किया—" मगर सारन्धाके तीवरों पर बल पड़ गये और मुखमण्डल गर्वसे सतेज हो गया। बोली—"भैया! तुमने कुलकी मर्यादा खो दी। ऐसा कभी न हुआ था।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सारन्धा भाई पर जान देती थी। उसके मुँहसे यह धिक्कार सुनकर अनिरुद्ध लज्जा और खेदसे विकल हो गया। वह वीराग्नि जिसे क्षण भरके लिये अनुरागने दबा दिया था, फिर ज्वलन्त हो गई। वह उल्टे पाँव लौटा और यह कहकर चला गया कि "सारन्धा! तुमने मुझे सदैवके लिए सचेत कर दिया। ये बातें मुझे कभी न भूलेंगी।"

अँधेरी रात थी। आकाशमण्डलमें तारोंका प्रकाश बहुत धुँधला था। अनिरुद्ध किलेसे बाहर निकला। पलभरमें नदीके उस पार जा पहुँचा, और फिर अन्धकारमें लुप्त हो गया। शीतला उसके पीछे पीछे किलेकी दीवारों तक आई, मगर जब अनिरुद्ध छलाँग मारकर बाहर कूद पड़ा तो वह विरहिणी एक चटान पर बैठकर रोने लगी।

इतनेमें सारन्धा भी वहीं आ पहुँची। शीतलाने नागिनकी तरह बल खाकर कहा—मर्य्यादा इतनी प्यारी है!

सारन्धा—हाँ।

शीतला—अपना पति होता तो हृदयमें छिपा लेतीं।

सारन्धा—न–छातीमें छुरी चुभा देती।

शीतलाने ऐंठ कर कहा—डोलीमें छिपाती फिरोगी–मेरी बात गिरहमें बाँध लो।

सारन्धा—जिस दिन ऐसा होगा, मैं भी अपना वचन पूरा कर दिखाऊँगी।

इस घटनाके तीन महीने पीछे अनिरुद्ध महरौनाको विजय करके लौटा। साल भर पीछे सारन्धाका विवाह ओरछाके राजा चम्पतरायसे हो गया। मगर उस दिनकी बातें दोनों महिलाओंके हृदय-स्थलमें काँटेकी तरह खटकती रहीं।

[२]

राजा चम्पतराय बड़े प्रतिभाशाली पुरुष थे। सारी बुंदेला जाति उनके नाम पर जान देती थी और उनके प्रभुत्वको मानती थी। गद्दी पर बैठते ही उसने मुगल बादशाहोंको कर देना बन्द कर दिया और वह अपने बाहुबलसे राज्यविस्तार करने लगा। मुसलमानोंकी सेनायें वार वार उस पर हमले करती थीं और हार कर लौट जाती थीं।

यही समय था जब अनिरुद्धने सारन्धाका चम्पतरायसे विवाह कर दिया। सारन्धाने मुँह-माँगी मुराद पाई। उसकी यह अभिलाषा कि मेरा पति बुंदेला जातिका कुलतिलक हो, पूरी हुई। यद्यपि राजाके रनिवासमें पाँच रानियाँ थीं, मगर उन्हें शीघ्र ही मालूम हो गया कि वह देवी जो हृदयमें मेरी पूजा करती है सारन्धा है।

परन्तु कुछ ऐसी घटनायें हुईं कि चम्पतरायको मुगल बादशाहका आश्रित होना पड़ा। उसने अपना राज्य अपने भाई पहाड़सिंहको सौंपा और आप देहलीको चला गया। यह शाहजहाँके शासनकालका अन्तिम भाग था। शाहजादा दारा शिकोह राजकीय कार्य्योंको सँभालते थे। युवराजकी आँखोंमें शील थी, और चित्तमें उदारता। उन्होंने चम्पतरायकी वीरताकी कथायें सुनी थीं, इसलिए उसका बहुत आदर सम्मान किया, और कालपीकी बहुमूल्य जागीर उसके भेंट की, जिसकी आमदनी नौ लाख थी। यह पहला अवसर था कि चम्पतरायको आये दिनकी लड़ाई झगड़ेसे निवृत्ति हुई और उसके साथ ही भोगविलासका प्राबल्य हुआ। रात दिन आमोदप्रमोदके चर्चे रहने लगे। राजा विलासमें डूबे, रानियाँ जड़ाऊ गहनों पर रीझीं। मगर सारन्धा इन दिनों बहुत उदास और संकुचित रहती। वह इन रहस्योंसे दूर दूर रहती, ये नृत्य और गानकी सभायें उसे सूनी प्रतीत होतीं।

एक दिन चम्पतरायने सारन्धासे कहा—सारन! तुम उदास क्यों रहती हो? मैं तुम्हें कभी हँसते नहीं देखता। क्या मुझसे नाराज हो?

सारन्धाकी आँखोंमें जल भर आये। बोली—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वामीजी ! आप क्यों ऐसा विचार करते हैं। जहाँ आप प्रसन्न हैं वहाँ मैं भी खुश हूँ।

चम्पतराय—मैं जबसे यहाँ आया हूँ, मैंने तुम्हारे मुखकमल पर कभी मनोहारिणी मुसकिराहट नहीं देखी। तुमने कभी अपने हाथोंसे मुझे बीड़ा नहीं खिलाया। कभी मेरी पाग नहीं सँवारी। कभी मेरे शरीर पर शस्त्र नहीं सजाये। कहीं प्रेम-लता मुरझाने तो नहीं लगी ?

सारन्धा—प्राणनाथ ! आप मुझसे ऐसी बात पूछते हैं जिसका उत्तर मेरे पास नहीं है। यथार्थमें इन दिनों मेरा चित्त कुछ उदास रहता है। मैं बहुत चाहती हूँ कि खुश रहूँ, मगर एक बोझासा हृदय पर धरा रहता है।

चम्पतराय स्वयं आनन्दमें मग्न थे। इसलिए सारन्धाको उनके विचारमें असन्तुष्ट रहनेका कोई उचित कारण नहीं हो सकता था। वे भौंहें सिकोड़ कर बोले—मुझे तुम्हारे उदास रहनेका कोई विशेष कारण नहीं मालूम होता। ओरछामें कौनसा सुख था जो यहाँ नहीं है ?

सारन्धाका चेहरा लाल हो गया। बोली—मैं कुछ कहूँ, आप नाराज तो न होंगे ?

चम्पतराय—नहीं। शौकसे कहो।

सारन्धा—ओरछामें मैं एक राजाकी रानी थी। यहाँ मैं एक जागीरदारकी चेरी हूँ। ओरछामें मैं वह थी, जो अवधमें कौशल्या थीं। परंतु यहाँ मैं बादशाहके एक सेवककी स्त्री हूँ। जिस बादशाहके सामने आज आप आदरसे शीश झुकाते हैं वह कल आपके नामसे काँपता था। रानीसे चेरी होकर भी प्रसन्नचित्त होना मेरे वशमें नहीं है। आपने यह पद और ये विलासकी सामग्रियाँ बड़े महँगे दामों मोल ली हैं।

चम्पतरायके नेत्रोंसे एक पर्दासा हट गया। वे अब तक सारंधाकी आत्मिक उच्चताको न जानते थे। जैसे बे-माँबापका बालक माँकी चर्चा सुनकर रोने लगता है, उसी तरह ओरछाकी यादसे चम्पतरायकी आँखें सजल हो गईं। उन्होंने आदरयुक्त अनुरागसे सारन्धाको हृदयसे लगा लिया।

आजसे उन्हें फिर उसी उजड़ी वस्तीकी फिक्र हुई जहाँसे धन और कीर्तिकी अभिलाषायें खींच लाई थीं।

[३]

माँ अपने खोये हुए बालकको पाकर निहाल हो जाती है। चम्पतरायके आनेसे बुन्देलखण्ड निहाल हो गया। ओरछाके भाग जागे। नौबतें झड़ने लगीं, और फिर सारन्धाके जातीय अभिमानका आभास दिखलाई देने लगा।

यहाँ रहते कही महीने बीत गये। इसी बीचमें शाहजहाँ बीमार पड़ा। शाहजादाओंमें पहलेसे ईर्षाका अग्नि दहक रही थी। यह खबर सुनते ही ज्वाला प्रचण्ड हुई। संग्रामकी तैयारियाँ होने लगीं। शाहजादा मुराद और मुहीउद्दीन अपने अपने दल सजा कर दक्खिनसे चले। वर्षाके दिन थे, नदी नाले उमड़े हुए थे, पर्वत और वन हरी हरी घाससे लहरा रहे थे। उर्बरा रंगबिरंगके रूप भर कर अपने सौन्दर्यको दिखाती थी।

मुराद और मुहीउद्दीन उमंगोंसे भरे हुए एकदम बढ़ते चले आते थे। यहाँ तक कि वे धौलपुरके निकट चम्बलके तट पर आ पहुँचे। परंतु यहाँ उन्होंने बादशाही सेनाको अपने शुभागमनके निमित्त तैयार पाया।

शहजादे अब बड़ी चिन्तामें पड़े। सामने अगम नदी लहरें मार रही थी, लोभसे भी अधिक विस्तारवाली। घाट पर लोहेकी दीवार खड़ी थी किसी योगीके त्यागके सदृश सुदृढ। विवश होकर चम्पतरायके पास सँदेसा भेजा कि खुदाके लिए आकर हमारी डूबती हुई नावको पार लगाइए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजाने भवनमें जाकर सारन्धासे पूछा—इसका क्या उत्तर दूँ?

सारन्धा—आपको मदद करनी होगी।

चम्पतराय—उनकी मदद करना दारा शिकोहसे वैर लेना है।

सारन्धा—यह सत्य है परन्तु हाथ फैलानेकी मर्य्यादा भी तो निभानी चाहिए।

चम्पतराय—प्रिये! तुमने सोचकर जवाब नहीं दिया।

सारन्धा—प्राणनाथ, मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि यह मार्ग कठिन है और हमें अपने योद्धाओंका रक्त पानीके समान बहाना पड़ेगा। परन्तु हम अपना रक्त बहायेंगे, और चम्बलकी लहरोंको लाल कर देंगे। विश्वास रखिए कि जब तक नदीकी धारा बहती रहेगी, वह हमारे वीरोंकी कीर्ति गान करती रहेगी। जबतक बुन्देलोंका एक भी नाम-लेवा रहेगा, यह रक्तबिन्दु उसके माथे पर केशरका तिलक बनकर चमकेगा।

वायुमण्डलमें मेघराजकी सेनायें उमड़ रही थीं। ओरछेके किलेसे बुन्देलोंकी एक काली घटा उठी और वेगके साथ चम्बलकी तरफ चली। प्रत्येक सिपाही वीररससे झूम रहा था। सारन्धाने दोनों राजकुमारोंको गलेसे लगा लिया और राजाको पानका बीड़ा देकर कहा—बुन्देलोंकी लाज अब तुम्हारे हाथ है।

आज उसका एक एक अंग मुसकिरा रहा है और हृदय हुलसित है। बुन्देलोंकी यह सेना देखकर शाहज़ादे फूले न समाये। राजा वहाँकी अंगुल अंगुल भूमिसे परिचित थे। उन्होंने बुन्देलोंको तो एक आड़में छिपा दिया और वे शाहज़ादोंकी फ़ौजको सजा कर नदीके किनारे किनारे पच्छिमकी ओर चले। दारा शिकोहको भ्रम हुआ कि शत्रु किसी अन्य घाटसे नदी उतरना चाहता है। उन्होंने घाटपरसे मोर्चे हटा लिये। घाटमें बैठे हुए बुन्देले इसी ताकमें थे। बाहर निकल पड़े और उन्होंने तुरत ही नदीमें घोड़े डाल दिये। चम्पतरायने शाहज़ादा दारा शिकोहको भुलावा देकर अपनी फ़ौज घुमा दी और वह बुन्देलोंके पीछे चलता हुआ उसे पार उतार लाया। इस कठिन चालमें सात घण्टोंका विलम्ब हुआ, परन्तु जाकर देखा तो सात सौ बुन्देला योद्धाओंकी लाशें फड़क रही थीं।

राजाको देखते ही बुन्देलोंको हिम्मत बँध गई। शाहज़ादोंकी सेनाने भी 'अल्लाहो अकबर' की ध्वनिके साथ धावा किया। बादशाही सेनामें हलचल पड़ गई। उनकी पंक्तियाँ छिन्न भिन्न हो गईं। हाथोंहाथ लड़ाई होने लगी, यहाँ तक कि शाम हो गई। रणभूमि रुधिरसे लाल हो गई और आकाश अँधेरा हो गया। घमसानकी मार हो रही थी। बादशाही सेना शाहज़ादोंको दबाये आती थी। अकस्मात् पच्छिमसे फिर बुंदेलोंकी एक लहर उठी और इस वेगसे बादशाही सेनाकी पुश्त पर टकराई कि उसके कदम उखड़ गये। जीता हुआ मैदान हाथसे निकल गया। लोगोंको कौतूहल था कि यह दैवी सहायता कहाँसे आई। सरल स्वभावके लोगोंकी धारणा थी कि यह फतहके फिरिश्ते हैं। परन्तु जब राजा चम्पतराय निकट गये तो सारन्धाने घोड़ेसे उतर कर उनके पद पर शीश झुका दिया। राजाको असीम आनन्द हुआ। यह सारन्धा थी!

समरभूमिका दृश्य इस समय अत्यन्त दुःखमय था। थोड़ी देर पहले जहाँ सजे हुए वीरोंके दल थे वहाँ अब बेजान लाशें फड़क रही थीं। मनुष्यने अपने स्वार्थके लिए आदिसे ही भाईयोंकी हत्या की है।

अब विजयी सेना लूट पर टूटी। पहले मर्द मर्दोंसे लड़ते थे, अब वे मुर्दोंसे लड़ रहे थे। वह वीरता और पराक्रमका चित्र था, यह नीचता और दुर्बलताकी ग्लानिप्रद तसबीर थी। उस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समय मनुष्य पशु बना हुआ था, अब वह पशुसे भी बढ़ गया था।

इस नोच खसोटमें लोगोंको बादशाही सेनाके सेनापति वलीबहादुर खाँकी लाश दिखाई दी। उसके निकट उसका घोड़ा खड़ा हुआ अपनी दुमसे मक्खियाँ उड़ा रहा था। राजाको घोड़ोंका शौक था। देखते ही वह उस पर मोहित हो गया। यह एराकी जातिका अति सुन्दर घोड़ा था। एक एक अंग साँचेमें ढला हुआ, सिंहकी सी छाती, चीतेकी सी कमर, उसका यह प्रेम और स्वामिभक्ति देखकर लोगोंको बड़ा कौतूहल हुआ। राजाने हुक्म दिया—"खबरदार! इस प्रेमी पर कोई हथियार न चलाये, इसे जीता पकड़ ले, यह मेरे अस्तबलकी शोभाको बढ़ावेगा। जो इसे मेरे पास लावेगा—उसे धनसे निहाल कर दूँगा।"

योद्धागण चारों ओरसे लपके, परन्तु किसीको साहस न होता था कि उसके निकट जा सके। कोई चुम्कारता था, कोई फन्देसे फँसानेकी फिक्रमें था। पर कोई उपाय सफल न होता था। वहाँ सिपाहियोंका एक मेला सा लगा हुआ था।

तब सारन्धा अपने खेमेंसे निकली और निर्भय होकर घोड़ेके पास चली गई। उसकी आँखोंमें प्रेमका प्रकाश था, छलका नहीं। घोड़ेने सिर झुका दिया। रानीने उसकी गर्दन पर हाथ रक्खा, और वह उसकी पीठ सुहलाने लगी। घोड़ेने उसके अञ्चलमें मुँह छिपा लिया। रानी उसकी रास पकड़ कर खेमेकी ओर चली। घोड़ा इस तरह चुपचाप उसके पीछे चला, मानों सदैवसे उसका सेवक है।

पर बहुत अच्छा होता कि घोड़ेने सारन्धासे भी निष्ठुरता की होती। यह सुन्दर घोड़ा आगे चलकर इस राजपरिवारके निमित्त रत्नजटित मृग प्रतीत हुआ।

[५]

संसार एक रणक्षेत्र है। इस मैदानमें उसी सेनापतिको विजयलाभ होता है जो अवसरको पहचानता है। वह अवसर देखकर जितने उत्साहसे आगे बढ़ता है, उतने ही उत्साहसे आपत्तिके समय पर पीछे हट जाता है। वह वीर पुरुष राष्ट्रका निर्माता होता है, और इतिहास उसके नाम पर यशके फूलोंकी वर्षा करता है।

पर इस मैदानमें कभी कभी ऐसे सिपाही भी आ जाते हैं जो अवसर पर कदम बढ़ाना जानते हैं, लेकिन संकटमें पीछे हटना नहीं जानते। यह रणधीर पुरुष विजयको नातक भेंट कर देता है। वह अपनी सेनाका नाम मिटा देगा, किन्तु जहाँ एक बार पहुँच गया है, वहाँसे कदम पीछे न हटायेगा। उनमें कोई विरला ही संसारक्षेत्रमें विजय प्राप्त करता है, किन्तु प्रायः उसकी हार विजयसे भी गौरवात्मक होती है। अगर वह अनुभवशील सेनापति राष्ट्रोंकी नीव डालता है, तो यह आन पर जान देनेवाला, यह मुँह न मोड़नेवाला सिपाही, राष्ट्रके भावोंको उच्च करता है, और उसके हृदय पर नैतिक गौरवको अंकित कर देता है। उसे इस कार्यक्षेत्रमें चाहे सफलता न हो, किन्तु जब किसी वाक्य या सभामें उसका नाम जबान पर आ जाता है, तो श्रोतागण एक स्वरसे उसके कीर्तिगौरवको प्रतिध्वनित कर देते हैं। सारन्धा इन्हीं 'आन पर जान देनेवालों' में थी।

शहजादा मुहीउद्दीन चम्बलके किनारेसे आगरेकी ओर चला तो सौभाग्य उसके सिर पर मोर्छल हिलाता था। जब वह आगरे पहुँचा तो विजयदेवीने उसके लिए सिंहासन सजा दिया।

औरंगजेब गुणज्ञ था। उसने बादशाही सरदारोंके अपराध क्षमा कर दिये, उनके राज्यपद लौटा दिये और राजा चम्पतरायको उसके बहु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूल्य कृत्योंके उपलक्षमें बारह हजारी मन्सब प्रदान किया। ओरछासे बनारस और बनारससे यमुना तक उसकी जागीर नियत की गई। बुंदेला राजा फिर राज्यसेवक बना, वह फिर सुखविलासमें डूबा, और रानी सारन्धा फिर पराधीनताके शोकसे घुलने लगी।

वली बहादुरखाँ बड़ा वाक्यचतुर मनुष्य था। उसकी मृदुलताने शीघ्र ही उसे बादशाह आलमगीरका विश्वासपात्र बना दिया। उस पर राजा-सभामें सम्मानकी दृष्टि पड़ने लगी।

खाँसाहबके मनमें अपने घोड़ेके हाथसे निकल जानेका बड़ा शोक था। एक दिन कुँवर छत्रसाल उसी घोड़े पर सवार होकर सैरको गया था। वह खाँ साहबके महलकी तरफ जा निकला। वली बहादुर ऐसे ही अवसरकी ताकमें था। उसने तुरत अपने सेवकोंको इशारा किया। राज-कुमार अकेला क्या करता! पाँव पाँव घर आया, और उसने सारन्धासे सब समाचार बयान किया। रानीका चेहरा तमतमा गया। बोली—मुझे इसका शोक नहीं कि घोड़ा गया, शोक इसका है कि तू उसे खोकर जीता क्यों लौटा। क्या तेरे शरीरमें बुंदेलोंका रक्त नहीं है? घोड़ा न मिलता न सही, किन्तु तुझे दिखा देना चाहिए था कि एक बुंदेला बालकसे उसका घोड़ा छीन लेना हँसी नहीं है।

यह कहकर उसने अपने पच्चीस योद्धाओंको तैयार होनेकी आज्ञा दी, स्वयं अस्त्र धारण किये और वह योद्धाओंके साथ वली बहादुरखाँके निवासस्थान पर जा पहुँची। खाँसाहब उसी घोड़े पर सवार होकर दरबार चले गये थे। सारन्धा दरबारकी तरफ चली, और एक क्षणमें किसी वेगवती नदीके सदृश बादशाही दरबारके सामने जा पहुँची। यह कैफियत देखते ही दरबारमें हलचल मच गई। अधिकारीवर्ग इधर उधरसे आकर जमा हो गये। आलमगीर भी सहनमें निकल आये। लोग अपनी अपनी तलवारें सँभालने लगे और चारों तरफ शोर मच गया। कितने ही नेत्रोंने इसी दरबारमें अमरसिंहकी तलवारकी चमक देखी थी। उन्हें वही घटना फिर याद आ गई।

सारन्धाने उच्च स्वरसे कहा—खाँसाहब! बड़ी लज्जाकी बात है कि आपने वह वीरता जो चम्बलके तट पर दिखानी चाहिए थी, आज एक अबोध बालकके सम्मुख दिखाई है। क्या यह उचित था कि आप उससे घोड़ा छीन लेते?

वली बहादुरखाँकी आँखोंसे अग्निज्वाला निकल रही थी। वे कड़ी आवाजसे बोले—किसी गैरको क्या मजाज है कि मेरी चीज अपने काममें लाये?

रानी—वह आपकी चीज नहीं, मेरी है। मैंने उसे रणभूमिमें पाया है और उस पर मेरा अधिकार है। क्या रणनीतिकी इतनी मोटी बात भी आप नहीं जानते?

खाँसाहब—वह घोड़ा मैं नहीं दे सकता, उसके बदलेमें सारा अस्तबल आपको नजर है।

रानी—मैं अपना घोड़ा लूँगी।

खाँसाहब—मैं उसके बराबर जवाहरात दे सकता हूँ, परन्तु घोड़ा नहीं दे सकता।

रानी—तो फिर इसका निश्चय तलवारोंसे होगा। बुंदेला योद्धाओंने तलवारें सौंत लीं और करीब था कि दरबारकी भूमि रक्तसे प्लावित हो जाय कि बादशाह आलमगीरने बीचमें आकर कहा—रानी साहबा! आप सिपाहियोंको रोकें। घोड़ा आपको मिल जायगा। परन्तु उसका मूल्य बहुत देना पड़ेगा।

रानी—मैं उसके लिए अपना सर्वस्व त्यागने पर तैयार हूँ।

बादशाह—जागीर और मन्सब भी?

रानी—जागीर और मन्सब कोई चीज नहीं।

बादशाह—अपना राज्य भी?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रानी—हाँ राज्य भी।

बादशाह—एक घोड़ेके लिए ?

रानी—नहीं-उस पदार्थके लिए जो संसारमें सबसे अधिक मूल्यवान् है।

बादशाह—वह क्या है ?

रानी—अपनी आन।

इस भाँति रानीने एक घोड़ेके लिए अपनी विस्तृत जागीर, उच्च राज्यपद और राजसम्मान सब हाथसे खोया और केवल इतना ही नहीं, भविष्यके लिए काँटे बोये। इस घड़ीसे अन्त दशा तक चम्पतरायको शान्ति न मिली।

[६]

राजा चम्पतरायने फिर ओरछेके किलेमें पदार्पण किया। उन्हें मन्सब और जागीरके हाथसे निकल जानेका अत्यन्त शोक हुआ, किन्तु उन्होंने अपने मुँहसे शिकायतका एक शब्द भी नहीं निकाला। वे सारन्धाके स्वभावको भली भाँति जानते थे। शिकायत इस समय पर कुठारका काम करती। कुछ दिन यहाँ शान्तिपूर्वक व्यतीत हुए। लेकिन बादशाह सारन्धाकी कठोर बातें भूला न था। वह क्षमा करना जानता ही न था। ज्यों ही भाइयोंकी ओरसे निश्चिन्त हुआ, उसने एक बड़ी सेना चम्पतरायका गर्व चूर्ण करनेके निमित्त भेजी और बाईस अनुभवशील सरदार इस मुहीम पर नियुक्त किये। शुभकरण बुंदेला बादशाहका सूबेदार था। वह चम्पतरायका बचपनका मित्र और सहपाठी था। उसने चम्पतरायको परास्त करनेका बीड़ा उठाया। और भी कितने ही बुंदेला सरदार राजासे विमुख होकर बादशाही सूबेदारसे आ मिले। एक घोर संग्राम हुआ। भाइयोंकी तलवारें भाइयोंहीके रक्तसे लाल हुईं। यद्यपि इस समरमें राजाको विजय प्राप्त हुआ, लेकिन उनकी शक्ति सदाके लिए क्षीण हो गई। निकटवर्ती बुंदेला राजे जो चम्पतरायके बाहुबल थे, बादशाहके कृपाकांक्षी बन बैठे। साथियोंमें कुछ तो काम आये, कुछ दगा कर गये। यहाँ तक कि निज सम्बान्धियोंने भी आँखें चुरा लीं। परन्तु इन कठिनाइयोंमें भी चम्पतरायने हिम्मत नहीं हारी। धीरजको न छोड़ा। उसने ओरछा छोड़ दिया, और वह तीन वर्ष तक बुंदेलखण्डके सघन पर्वतों पर छिपा फिरता रहा। बादशाही सेनायें शिकारी जानवरोंकी भाँति सारे देशमें मँड़रा रही थीं। आये दिन राजाका किसी न किसीसे सामना हो जाता था। सारन्धा सदैव उसके साथ रहती, और उसका साहस बढ़ाया करती। बड़ी बड़ी आपत्तियोंमें भी जब कि धैर्य्य लुप्त हो जाता—और आशा साथ छोड़ देती, आत्मरक्षाका धर्म्म उसे सम्हाले रहता था। तीन सालके बाद अन्तमें बादशाहके सूबेदारोंने आलमगीरको सूचना दी कि इस शेरका शिकार आपके सिवाय और किसीसे न होगा। उत्तर आया कि सेनाको हटा लो, और घेरा उठा लो। राजाने समझा, संकटसे निवृत्ति हुई, पर यह बात शीघ्र ही भ्रमात्मक सिद्ध हो गई।

[७]

तीन सप्ताहसे बादशाही सेनाने ओरछाको घेर रक्खा है। जिस तरह कठोर वचन हृदयको छेद डालते हैं, उसी तरह तोपके गोलोंने दीवारोंको छेद डाला है। किलेमें २० हजार आदमी घिरे हुए हैं, लेकिन उनमें आधेसे अधिक स्त्रियाँ और उनसे कुछ ही कम बालक हैं। मर्दोंकी संख्या दिनों दिन न्यून होती जाती है। आने-जानेके मार्ग चारों तरफसे बन्द हैं। हवाका भी गुजर नहीं। रसदका सामान बहुत कम रह गया है। स्त्रियाँ पुरुषों और बालकोंको जीवित रखनेके लिए आप उपवास करती हैं। लोग बहुत हताश हो रहे हैं। औरतें सूर्य्यनारायणकी ओर हाथ उठा उठा कर शत्रुको कोसती हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बालकवृन्द मारे क्रोधके दीवारोंकी आड़से उन पर पत्थर फेंकते हैं, जो मुश्किलसे दीवारके उस पार जाते हैं। राजा चम्पतराय स्वयम् ज्वरसे पीड़ित हैं। उन्होंने कई दिनसे चारपाई नहीं छोड़ी। उन्हें देखकर लोगोंको कुछ ढारस होता था, लेकिन उनकी बीमारीसे सारे किलेमें नैराश्य छाया हुआ है।

राजाने सारन्धासे कहा—आज शत्रु जरूर किलेमें घुस आयेंगे।

सारन्धा—ईश्वर न करे कि इन आँखोंसे वह दिन देखना पड़े।

राजा—मुझे बड़ी चिन्ता इन अनाथ स्त्रियों और बालकोंकी है। गेहूँके साथ यह घुन भी पिस जायँगे।

सारन्धा—हम लोग यहाँसे निकल जायँ तो कैसा?

राजा—इन अनाथोंको छोड़ कर?

सारन्धा—इस समय इन्हें छोड़ देनेहीमें कुशल है। हम न होंगे तो शत्रु इन पर कुछ दया अवश्य ही करेंगे।

राजा—नहीं, ये लोग मुझसे न छोड़े जायँगे। जिन मर्दोंने अपनी जान सेवामें अर्पण कर दी है, उनकी स्त्रियों और बच्चोंको मैं यों कदापि नहीं छोड़ सकता।

सारन्धा—लेकिन यहाँ रहकर हम उनकी कुछ मदद भी तो नहीं कर सकते।

राजा उनके साथ प्राण तो दे सकते हैं। मैं उनकी रक्षामें अपनी जान लड़ा दूँगा। उनके लिए बादशाही सेनाकी खुशामद करूँगा। कारावासकी कठिनाइयाँ सहूँगा, किन्तु इस संकटमें उन्हें छोड़ नहीं सकता।

सारन्धाने लज्जित होकर सिर झुका लिया और वह सोचने लगी, निस्संदेह अपने प्रिय साथियोंको आगकी आँचमें छोड़कर अपनी जान बचाना घोर नीचता है। मैं ऐसी स्वार्थांध क्यों हो गई हूँ? लेकिन फिर एकाएक विचार उत्पन्न हुआ। बोली—यदि आपको विश्वास हो जाय कि इन आदमियोंके साथ कोई अन्याय न किया जायगा तब तो आपको चलनेमें कोई बाधा न होगी?

राजा—(सोचकर) कौन विश्वास दिलायेगा?

सारन्धा—बादशाहके सेनापतिका प्रतिज्ञापत्र।

राजा—हाँ तब मैं सानन्द चलूँगा।

सारन्धा विचारसागरमें डूबी। बादशाहके सेनापतिसे क्यों कर वह प्रतिज्ञा कराऊँ? कौन यह प्रस्ताव लेकर जायगा? और वे निर्दयी ऐसी प्रतिज्ञा करने ही क्यों लगे? उन्हें तो अपने विजयकी पूरी आशा है। मेरे यहाँ ऐसा नीति-कुशल, वाक्पटु, चतुर कौन है, जो इस दुस्तर कार्य्यको सिद्ध करे। छत्रसाल चाहे तो कर सकता है। उसमें ये सब गुण मौजूद हैं।

इस तरह मनमें निश्चय करके रानीने छत्रसालको बुलाया। यह उसके चारों पुत्रोंमें सबसे बुद्धिमान् और साहसी था। रानी उसे सबसे अधिक प्यार करती थी। जब छत्रसालने आकर रानीको प्रणाम किया तो उसके कमलनेत्र सजल हो गये और हृदयसे दीर्घ निश्वास निकल आया।

छत्रसाल—माता मेरे लिए क्या आज्ञा है।

रानी—आज लड़ाईका क्या ढंग है?

छत्रसाल—हमारे पचास योद्धा अब तक काम आ चुके हैं।

रानी—बुंदेलोंकी लाज अब ईश्वरके हाथ है।

छत्रसाल—हम आज रातको छापा मारेंगे।

रानीने संक्षेपसे अपना प्रस्ताव छत्रसालके सामने उपस्थित किया और कहा—यह काम किसको सौंपा जाय?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छत्रसाल—मुझको।

" तुम इसे पूरा कर दिखओगे ? "

" हाँ, मुझे पूर्ण विश्वास है। "

" अच्छा जाओ, परमात्मा तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करे। "

छत्रसाल जब चला तो रानीने उसे हृदयसे लगा लिया और तब आकाशकी ओर दोनों हाथ उठाकर कहा—दयानिधि, मैंने अपना तरुण और होनहार पुत्र बुंदेलोंकी आनके भेट कर दिया। अब इस आनको निभाना तुम्हारा काम है। मैंने बड़ी मूल्यवान् वस्तु अर्पित की है। इसे स्वीकार करो।

[८]

दूसरे दिन प्रातःकाल सारन्धा स्नान करके थालमें पूजाकी सामग्री लिये मन्दिरको चली। उसका चेहरा पीला पड़ गया था, और आँखों तले अँधेरा छाया जाता था। वह मन्दिरके द्वार पर पहुँची थी, कि उसके थालमें बाहरसे आकर एक तीर गिरा। तीरकी नोक पर एक कागजका पुर्जा लिपटा हुआ था। सारन्धाने थाल मन्दिरके चबूतरे पर रख दिया, और पुर्जेको खोलकर देखा तो आनन्दसे चेहरा खिल गया। लेकिन यह आनन्द क्षणभरका मेहमान था। हाय! इस पुर्जेके लिए मैने अपना प्रिय पुत्र हाथसे खो दिया है। कागजके टुकड़ेको इतने महँगे दामों किसने लिया होगा ?

मंदिरसे लौटकर सारन्धा राजा चम्पतरायके पास गई और बोली—" प्राणनाथ! आपने जो वचन दिया था, उसे पूरा कीजिए। " राजाने चौंक कर पूछा—" तुमने अपना वादा पूरा कर लिया ? " रानीने वह प्रतिज्ञापत्र राजाको दे दिया। चम्पतरायने उसे गौरसे देखा फिर बोले- " अब मैं चलूँगा और ईश्वरने चाहा तो एक बेर फिर शत्रुओंकी खबर लूँगा। लेकिन सारन! सच बताओ इस पत्रके लिए क्या देना पड़ा ? "

रानीने कुण्ठित स्वरसे कहा—बहुत कुछ।

राजा—सुनूँ ?

रानी—एक जवान पुत्र।

राजाको बाण सा लगा। पूछा—कौन ? अंगदराय ?

रानी—नहीं।

राजा—रतनसाह ?

रानी—नहीं।

राजा—छत्रसाल ?

रानी—हाँ।

जैसे कोई पक्षी गोली खाकर परोंको फड़फड़ाता है और तब बेदम होकर गिर पड़ता है, उसी भाँति चम्पतराय पलँगसे उछले और फिर अचेत होकर गिर पड़े। छत्रसाल उनका परम प्रिय पुत्र था। उनके भविष्यकी सारी कामनायें उसी पर अवलम्बित थीं। जब चेत हुआ तो बोले-" सारन, तुमने बुरा किया। अगर छत्रसाल मारा गया तो बुंदेला वंशका नाश हो जायगा। "

अँधेरी रात थी। रानी सारन्धा घोड़े पर सवार चम्पतरायको पालकीमें बैठाये किलेके गुप्त मार्गसे निकली जाती थी। आजसे बहुत काल पहले एक दिन ऐसी ही अँधेरी, दुःखमय रात्रि थी। तब सारन्धाने शीतलादेवीको कुछ कठोर वचन कहे थे। शीतलादेवीने उस समय जो भविष्यद्वाणी की थी वह आज पूरी हुई। क्या सारन्धाने उसका जो उत्तर दिया था वह भी पूरा होकर रहेगा ?

[८]

मध्याह्नकाल था। सूर्य्यनारायण सिर पर आकर अग्निकी वर्षा कर रहे थे। शरीरको झुलसानेवाली प्रचण्ड प्रखर वायु वन और पर्वतोंमे आग लगाती फिरती थी। ऐसा विदित होता था मानों अग्निदेवकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समस्त सेना गरजती हुई चली आ रही है। गगनमण्डल इस भयसे काँप रहा था। रानी सारन्धा घोड़े पर सवार, चम्पतरायको लिए, पच्छिमकी तरफ चली जाती थी। ओरछा दस कोस पीछे छूट चुका था, और प्रतिक्षण यह अनुमान स्थिर होता जाता था कि अब हम भयके क्षेत्रसे बाहर निकल आये। राजा पालकीमें अचेत पड़े हुए थे और कहार पसीनेमें शराबोर थे। पालकीके पीछे पाँच सवार घोड़ा बढ़ाये चले आते थे। प्यासके मारे सबका बुरा हाल था। तालू सूखा जा रहा था। किसी वृक्षकी छाँह और कुएँकी तलाशमें आँखे चारों ओर दौड़ रही थीं।

अचानक सारन्धाने पीछेकी तरफ फिर कर देखा तो उसे सवारोंका एक दल आता हुआ दिखाई दिया। उसका माथा ठनका कि अब कुशल नहीं है। ये लोग अवश्य हमारे शत्रु हैं। फिर विचार हुआ कि शायद मेरे राजकुमार अपने आदमियोंको लिए हमारी सहायताको आ रहे हैं। नैराश्यमें भी आशा साथ नहीं छोड़ती। कई मिनिट तक वह इसी आशा और भयकी अवस्थामें रही। यहाँ तक कि वह दल निकट आ गया और सिपाहियोंके वस्त्र साफ नजर आने लगे। रानीने एक ठण्डी साँस ली, उसका शरीर तृणवत् काँपने लगा। ये बादशाही सेनाके लोग थे।

सारन्धाने कहारोंसे कहा—डोली रोक लो। बुंदेला सिपाहियोंने भी तलवारें खींच लीं। राजाकी अवस्था बहुत शोचनीय थी; किन्तु जैसे दबी हुई आग हवा लगते ही प्रदीप्त हो जाती है, उसी प्रकार इस संकटका ज्ञान होते ही उनके जर्जर शरीरमें वीरात्मा चमक उठी। वे पालकीका पर्दा उठा कर बाहर निकल आये। धनुषबाण हाथमें ले लिया। किन्तु वह धनुष जो उनके हाथमें इन्द्रका वज्र बन जाता था, इस समय जरा भी न झुका। सिरमें चक्कर आया, पैर थर्राये, और वे धरतीपर गिर पड़े। भावी अमंगलकी सूचना मिल गई। उस पंखरहित पक्षीके सदृश जो साँपको अपनी तरफ आते देखकर ऊपरको उचकता और फिर गिर पड़ता है, राजा चम्पतराय फिर सँभलकर उठे और फिर गिर पड़े। सारन्धाने उन्हें सँभालकर बैठाया, और रोकर बोलनेकी चेष्टा की। परन्तु मुँहसे केवल इतना निकला—"प्राणनाथ!" इसके आगे उसके मुँहसे एक शब्द भी न निकल सका। आनपर मरनेवाली सारन्धा इस समय साधारण स्त्रियोंकी भाँति शक्तिहीन हो गई। लेकिन एक अंश तक यह निर्बलता स्त्रीजातिकी शोभा है।

चम्पतराय बोले—"सारन! देखो हमारा एक और वीर जमीन पर गिरा। शोक! जिस आपत्तिसे यावज्जीवन डरता रहा उसने इस अन्तिम समय आ घेरा। मेरी आँखोंके सामने शत्रु तुम्हारे कोमल शरीरमें हाथ लगायेंगे, और मैं जगहसे हिल भी न सकूँगा। हाय! मृत्यु, तू कब आयेगी! यह कहते कहते उन्हें एक विचार आया। तलवारकी तरफ हाथ बढ़ाया, मगर हाथोंमें दम न था! तब सारन्धासे बोले—"प्रिये! तुमने कितने ही अवसरों पर मेरी आन निभाई है।"

इतना सुनते ही सारन्धाके मुरझाये हुए मुख पर लाली दौड़ गई। आँसू सूख गये। इस आशाने कि मैं अब भी पतिके कुछ काम आ सकती हूँ, उसके हृदयमें बलका संचार कर दिया। वह राजाकी ओर विश्वासोत्पादकभावसे देखकर बोली—ईश्वरने चाहा तो मरते दमतक निबाहूँगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रानीने समझा राजा मुझे प्राण दे देनेका संकेत कर रहे हैं।

चम्पतराय—तुमने मेरी बात कभी नहीं टाली।

सारन्धा—मरते दमतक न टालूँगी।

राजा—यह मेरी अन्तिम याचना है। इसे अस्वीकार न करना।

सारन्धाने तलवारको निकालकर अपने वक्षस्थल पर रख लिया और कहा—यह आपकी आज्ञा नहीं है मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मरूँ तो यह मस्तक आपके पदकमलों पर हो।

चम्पतराय—तुमने मेरा मतलब नहीं समझा। क्या तुम मुझे इसलिए शत्रुओंके हाथमें छोड़ जाओगी कि मैं बेड़ियाँ पहने हुए दिल्लीकी गलियोंमें निन्दाका पात्र बनूँ?

रानीने जिज्ञासादृष्टिसे राजाको देखा। वह उनका मतलब न समझी।

राजा—मैं तुमसे एक वरदान माँगता हूँ।

रानी—सहर्ष माँगिए।

राजा—यह मेरी अन्तिम प्रार्थना है। जो कुछ कहूँगा, करोगी?

रानी—सिरके बल करूँगी।

राजा—देखो-तुमने वचन दिया है। इनकार न करना।

रानी—(काँपकर) आपके कहनेकी देर है।

राजा—अपनी तलवार मेरी छातीमें चुभा दो।

रानीके हृदय पर वज्रपात सा हो गया। बोली—जीवननाथ!—। इसके आगे वह और कुछ न बोल सकी–आँखोंमें नैराश्य छा गया।

राजा—मैं बेड़ियाँ पहननेके लिए जीवित रहना नहीं चाहता।

रानी—हाय मुझसे यह कैसे होगा!

पाँचवाँ और अन्तिम सिपाही धरती पर गिरा। राजाने झुँझलाकर कहा—इसी जीवट पर आन निभानेका गर्व था?

बादशाहके सिपाही राजाकी तरफ लपके। राजाने नैराश्यपूर्णभावसे रानीकी ओर देखा। रानी क्षणभर अनिश्चित रूपसे खड़ी रही। लेकिन संकटमें हमारी निश्चयात्मक शक्ति बलवान् हो जाती है। निकट था कि सिपाही लोग राजाको पकड़ लें कि सारन्धाने दामिनीकी भाँति लपक कर अपनी तलवार राजाके हृदयमें चुभा दी।

प्रेमकी नाव प्रेमके सागरमें डूब गई। राजाके हृदयसे रुधिरकी धारा निकल रही थी, पर चेहरे पर शांति छाई हुई थी।

कैसा करुण दृश्य है! वह स्त्री जो अपने पति पर प्राण देती थी, आज उसकी प्राणघातिका है। जिस हृदयसे आलिङ्गित होकर उसने यौवन सुख लूटा, जो हृदय उसकी अभिलाषाओंका केन्द्र था, जो हृदय उसके अभिमानका पोषक था, उसी हृदयको आज सारन्धाकी तलवार छेद रही है। किस स्त्रीकी तलवारसे ऐसा काम हुआ है!

आह! आत्माभिमानका कैसा विशादमय अन्त है। उदयपुर और मारवाड़के इतिहासमें भी आत्मगौरवकी ऐसी घटनायें नहीं मिलतीं।

बादशाही सिपाही सारन्धाका यह साहस और धैर्य्य देखकर दंग रह गये। सरदारने आगे बढ़कर कहा—रानी साहबा! खुदा गवाह है; हम सब आपके गुलाम हैं। आपका जो हुक्म हो उसे ब सरो चश्म बजा लायेंगे।

सारन्धाने कहा—अगर हमारे पुत्रोंमेंसे कोई जीवित हो तो ये दोनों लाशें उसे सौंप देना।

यह कह कर उसने वही तलवार अपने हृदयमें चुभा ली। जब वह अचेत होकर धरती पर गिरी तो उसका सिर राजा चम्पतरायकी छाती पर था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुस्तक-परिचय।

जैनसमाज। मासिक पत्र। आकार डबल-क्राउन सोलह पेजी। पृष्ठ ४८। वार्षिक मूल्य एक रुपया। सम्पादक और प्रकाशक श्रीयुत बाबू टेकचन्दजी संघी बी. ए., कालबादेवी, बम्बई। अप्रैलसे इस मासिकपत्रका निकलना शुरू हुआ है। चार अंक निकल चुके हैं। श्वेताम्बर समाजमें गुजराती भाषाके कोई एक दर्जन पत्र निकलते हैं; परन्तु गत वर्षतक हिन्दीका एक भी पत्र नहीं था। हर्षका विषय है कि इस ओर कुछ हिन्दीप्रेमियोंका ध्यान आकर्षित हुआ है और अभी अभी कई हिन्दी पत्र निकलने लगे हैं। जैनसमाज उन सबमें अच्छा है। जान पड़ता है, आगे इसकी अवस्था और भी सुधर जायगी और यह स्थायीरूपसे चलेगा। अब तक इसे लगभग आठ सौ रुपयोंकी सहायता मिल चुकी है। हमारे सामने मई, जून और जुलाईके अंक हैं। इनमें कई लेख पढ़ने योग्य हैं। सम्पादक महाशय कट्टर श्वेताम्बर नहीं हैं। उनके हृदयमें दिगम्बरोंके लिए भी स्थान है, अतएव इस पत्रसे हमारे दिगम्बरभाई भी लाभ उठा सकते हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें साधुओंका प्रभाव सीमासे अधिक है। उनकी संख्या भी अधिक है और श्रावकोंमें धार्मिक ज्ञानका प्रायः अभाव है। इस कारण साधुओंकी नादिरशाही खूब ही चलती है। उनके विरुद्धमें आवाज उठानेवाला कोई नहीं। हमें आशा है कि समाजके सम्पादकका ध्यान इस ओर जायगा। उसके पिछले अंकके एक लेखमें साधुओंकी दुर्दशा पर कुछ पंक्तियाँ लिखी भी गई हैं। "साधुओंकी दशा वर्तमान कालमें इतनी गर्हणीय हो रही है कि उनमें पिछले आचार्योंके नियमोंका लेश भी नजर नहीं आता।......एक पदस्थ दूसरेके शिष्यके लिए अपने शिष्योंको दूर करता है और शिष्य अपने गुरु पर नोटिस प्रकट करता है!....एक धर्माचार्य दूसरे धर्माचार्यको (एक ही गुरुके शिष्य गुरुभाई होकर) धर्मसे एवं कर्मसे पतित बतलाता है, तो दूसरा उसे भ्रष्टाचारी बतलाता है।...गुरु शिष्यके लिए वकीलकी राय लेने अदालतका आश्रय देखता है। कितने शर्मकी बात है!" इस अवस्थाको सुधारनेका निर्भयताके साथ आन्दोलन होना चाहिए। सामाजिक कुरीतियों पर कुछ गहराईके साथ चर्चा होनी चाहिए। अब यह सब जानने लगे हैं कि वृद्धविवाह, कन्याविक्रय आदि बुरे हैं, उनकी बुराइयोंको बतलानेके लिए अब कलम घिसनेकी आवश्यकता नहीं है; पर वे दूर नहीं हो रहे हैं, इसकी कारणभूत जो दूसरी परिस्थितियाँ हैं, उन पर विचार होना चाहिए।

२ मुनि। यह भी हिन्दीका एक मासिक पत्र है। बोदवड़ (खानदेश) के महावीर मुनिमण्डलकी ओरसे यह डिमाई अठपेजीके ३२ पृष्ठोंमें निकलता है। वार्षिक मूल्य दो रुपया है। श्रावणसे इसका दूसरा वर्ष प्रारंभ हुआ है। पहले वर्षमें इसके सम्पादक श्रीयुत ब्र० विश्वंभरदासजी गार्गीय थे, और इस वर्ष मुरारके बाबू श्यामलालजी गुप्त हैं। पत्र स्थानकवासी सम्प्रदायका है और इसके पूर्व तथा वर्तमान सम्पादक दिगम्बर सम्प्रदायके हैं। 'मुनि' नामसे यह आशा की जाती थी कि इसमें मुनियों या साधुओंके सम्बन्धमें कुछ चर्चा रहा करेगी; परन्तु देखते हैं कि इसके सारे ही पृष्ठ अन्यान्य पत्रोंके समान सामाजिक उन्नति आदिके सम्बन्धमें ही भरे रहते हैं। मालूम नहीं, इसके प्रकाशकोंने इस नामकी सार्थकता किस तरह करनी सोची है। इसके विविध विषयसम्बन्धी लेख साधारणतः अच्छे रहते हैं। उनमें कोई साम्प्रदायिकता भी नहीं रहती है। दिगम्बरी और दूसरे भाई भी इससे लाभ उठा सकते हैं। सम्पादक महाशय सूचित करते हैं कि दशलक्षणपर्वमें मुनिका एक विशेष अंक निकलेगा, जिसमें अनेक चित्र और पुष्कल लेख रहेंगे। जो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्राहक नहीं हैं उन्हें यह अंक ॥=) में मिलेगा। स्थानकवासी सम्प्रदायमें तो दशलक्षणपर्व माना नहीं जाता, फिर मुनिका खास अंक इस पर्वके उपलक्ष्यमें क्यों निकलता है ?

कच्छी जैनमित्र । सम्पादक, दामजी त्रिकमजी सायला और प्रकाशक, जेठाभाई देवजी नागड़ा, काथाबाजार मांडवी, बम्बई । गुजराती भाषाका मासिक पत्र है । जूनसे निकलना शुरू हुआ है। चार अंक निकल चुके हैं। जैनहितैषीके आकारके लगभग ३६ पृष्ठों पर निकलता है। बड़ी ही सजधजसे निकला है। प्रत्येक अंकमें दश दश बारह बारह चित्र रहते हैं । कवरपेज पर एक सुन्दर स्त्रीका चित्र है। यह इस लिए कि अब मनोमोहिनियोंके चित्रके बिना लोग पत्रों पर नहीं रीझते ! लेखकोंको रिझानेका भी प्रयत्न किया गया है। जिस लेखकका लेख रहता है, उसका उस लेखके प्रारंभमें एक चित्र भी रहता है। यहाँ तक कि कई साधु महाशयोंने भी अपने लेखोंमें अपने चित्रोंका प्रकाशित कराना उचित समझा है। हम देखते हैं कि श्वेताम्बर साधुओंमें चित्र प्रकाशित करानेका रोग बेतरह बढ़ रहा है । इन दिनों श्वेताम्बर सम्प्रदायकी ऐसी बहुत थोड़ी पुस्तकें छपती हैं; यहाँतक कि दश बीस पन्नेके ट्रेक्ट भी–जिनमें कोई मुनि महाशय विराजमान न हों। पत्रका मूल्य तीन रुपया है, जो इस समयकी महँगीमें एक तरहसे कम ही है। बम्बईमें कच्छनिवासी जैनोंकी संख्या बहुत है और उनमें धनिक व्यापारी भी बहुत हैं। यह पत्र उन्हींकी सहायतासे निकला है। लेख साधारणतया अच्छे रहते हैं; यद्यपि उनमें जैनदृष्टिकी कमी रहती है। कई लेख और कई चित्र पठनीय और दर्शनीय निकले हैं। हम इस पत्रकी हृदयसे उन्नति चाहते हैं।

३ **शारदा** । सम्पादक और प्रकाशक, पं० चंद्रशेखर शर्मा, दारागंज प्रयाग। यह संस्कृत भाषाकी मासिकपत्रिका है। सरस्वतीके आकारमें ४० पृष्ठों पर निकलती है । इसका वार्षिक मूल्य तीन रुपया है। इसके सम्पादक महाशय संस्कृतके सुलेखक और बहुश्रुत विद्वान् हैं। संस्कृतके नामी नामी पण्डितोंके लेख इसमें रहते हैं । चैत्र १९७४ की प्रथम संख्या हमारे सामने है। इसमें सम्पादकीय टिप्पणियाँ, मीमांसादर्शन, मन, हरि और हरमें अभेद, आल्हा, पद्मावतीपरिणय चम्पू, पालिभाषाके जातकोंका अनुवाद, आयुर्वेदका महत्त्व, आदि अनेक विषयोंके लेख हैं। साहित्यप्रचारशीर्षक टिप्पणीमें सम्पादकने पाली और प्राकृत भाषाके बौद्ध जैनग्रन्थोंको भारतीय साहित्यमें स्थान देनेके लिए और उनका अध्ययन करनेके लिए अपने पाठकोंका ध्यान आकर्षित किया है। उसका सारांश यह है—"धर्मभेदसे साहित्यका भेद करना ठीक नहीं। जब इस समय शेक्सपियर और मिल्टन आदि ईसाई कवियोंके ग्रन्थ सब लोग पढ़ते हैं, तब बौद्ध जैन साहित्यने क्या अपराध किया है ? पूर्वसमयमें धर्मग्रन्थोंका अध्ययन ही प्रचुर ज्ञानका कारण माना जाता था; पर अब वह बात नहीं है। व्यावहारिक विषय भी इस समय अध्ययनकोटिमें प्रविष्ट हो गये हैं। धार्मिक ग्रन्थोंके अध्ययनसे लौकिक फल नहीं मिलता है। इस कारण लोग उन्हें नहीं पढ़ना चाहते। जो धार्मिक हैं और धर्मलब्ध धनसे जिनका निर्वाह होता है वे भी अपने लड़कोंको व्यवहारज्ञानकी वृद्धिके लिए अँगरेजी स्कूलोंमें भेजते हैं और धार्मिक ग्रन्थ नहीं पढ़ाते; व्यावहारिक ज्ञानकी स्वयं निन्दा करते हुए भी बच्चोंको उस ओर उत्साहित करते हैं। ऐसी दशामें बौद्ध जैनसाहित्यका अध्ययन और प्रचार हानिकारक नहीं माना जा सकता । बौद्ध–जैन–साहित्यमें धर्मभेद भले ही हो, पर हृदयभेद नहीं है। भारतीय हृदयसे बौद्ध जैनसाहित्य भी लिखे गये हैं। उनमें भी भारतीय भाव ही मिलते हैं, अतएव भारतवासियोंको इन दोनों साहित्योंका प्रचार करना चाहिए। ......धर्मशास्त्र और ज्योतिः-शास्त्रमें विरोध नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है, क्योंकि धर्मशास्त्रमें जो विषय कहा गया है वह ज्योतिःशास्त्रमें नहीं है और जो ज्योतिःशास्त्रमें है वह धर्मशास्त्रमें नहीं, तब दोनोंमें क्यों विरोध हो ? यही बात बौद्ध जैन साहित्यके विषयमें भी समझनी चाहिए। हमारे ऋषियोंने अन्य विषयोंका वर्णन किया है और बौद्ध जैनोंने अन्यका। जिस तरह कोई धर्मशास्त्र पढ़ता है, कोई ज्योतिःशास्त्र पढ़ता है, पर ये एक दूसरे पर कटाक्ष नहीं करते। इसी प्रकार किसीका अनुराग आर्ष साहित्यमें है, किसीका बौद्धमें और किसीका जैनमें। इस विषयमें लोग स्वतंत्र हैं।" शारदामें जैनसाहित्यसम्बन्धी भी कई लेख निकल गये हैं। जैनसाहित्यसम्बन्धी लेखोंको प्रकाशित करनेके लिए वे उत्सुक भी रहते हैं। क्या हम अपने समाजके संस्कृतज्ञ पण्डितोंसे आशा करें कि वे शारदाको मँगाकर पढ़ा करें और उसके द्वारा समय समय पर जैनसाहित्यका सन्देशा जैनेतर विद्वानों तक पहुँचाया करें। हमारी समझमें शास्त्रार्थोंकी अपेक्षा इस मार्गसे जैनधर्मकी अधिक प्रभावना होगी। शारदाका प्रचार हम हृदयसे चाहते हैं।

४ **मल्लारि-मार्तंड-विजयका नागपंचमीका अंक।** इन्दौर दरबारकी ओरसे यह साप्ताहिक पत्र हिन्दी और मराठीमें प्रकाशित हुआ करता है। इसके मराठी विभागके सम्पादक श्रीयुत वी. सी. सर्वटे बी. ए. एल एल. बी. और हिन्दी विभागके श्रीयुत सुखसम्पत्तिराय भण्डारी (जैन) हैं। इन्दौरमें नागपंचमीका त्योहार बड़े ठाटबाटसे मनाया जाता है। यह अंक भी उसीके उपलक्ष्यमें निकला है। इसमें मराठीके १७ और हिन्दीके ९ लेख हैं और यह विशेषता है कि उन सबके लेखक इन्दौरके ही निवासी हैं। मराठीके लेखोंमें संस्कृत भाषाका अभ्यास, सुखदुःखमीमांसा आदि लेख महत्त्वके हैं और हिन्दीमें समाजसेवा, मद्यपान, आदि। प्रायः सभी लेख उच्चश्रेणीके हैं। साधारण लोगोंके उपयोगमें आ सकनेवाले लेखोंका इसमें एक तरहसे अभाव है। अंक संग्रहणीय है। पत्रका वार्षिक मूल्य तीन रुपया है। इस अंकका मूल्य लिखा नहीं।

५ **जैननित्यपाठसंग्रह।** कलकत्तेकी जैनमित्र मंडलीने इस पाठसंग्रहको छपाया है। इसमें सब मिलाकर ३५ पाठ हैं। भक्तामर और तत्त्वार्थ सूत्र ये दो पाठ संस्कृतके हैं, शेष सब भाषाके। बम्बईमें जो भाषा नित्यपाठसंग्रह छपा था, उससे इसमें कई पाठ ज्यादा हैं। पाण्डे हीरानन्दकृत एकीभाव और पं० शान्तिदासकृत विषापहार, ये दो पाठ ऐसे हैं जो अभीतक कहीं भी प्रकाशित नहीं हुए थे। छपाई अच्छी और कागज बढ़िया है, तिसपर भी डबल क्राउन सोलह पेजी साइजके १९२ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य बारह आने कम है। पुठेवाली पुस्तकका मूल्य चौदह आने है। मित्रमण्डलीका ठिकाना 'नं० ९ विश्वकोश लेन, बाग बाजार' है।

६–**शत्रुंजय तीर्थोद्धारप्रबन्ध।** सम्पादक, मुनि जिनविजयजी। प्रकाशक, जैन आत्मानन्द-सभा, भावनगर। डिमाई अठपेजी आकारके ११२ पृष्ठ। कपड़ेकी जिल्द, मूल्य दश आने। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें शत्रुंजय तीर्थका बड़ा माहात्म्य है। इस तीर्थके अनेक पुरुषोंने अनेक बार उद्धार किये हैं और उनका वर्णन श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें मिलता है। सबसे अन्तिम सातवाँ उद्धार विक्रम संवत् १५५७ को कर्मासाह नामके श्रावकने कराया था। यह धर्मात्मा श्रावक चित्तौड़का रहनेवाला था और ओसवालज्ञातीय था। कपड़ेका बहुत बड़ा व्यापारी और धनी था। इसने शत्रुंजयके मुख्य मंदिरका उद्धार कराके मुसलमानों द्वारा खण्डित हुई सारी प्रतिमाओंके स्थानमें नवीन प्रतिमायें बनवाकर स्थापित करवाईं और बड़ी धूमधामके साथ तीर्थप्रतिष्ठा कराई। इस कार्यमें उसने अगणित धन खर्च किया। यह प्रतिष्ठा विद्यामण्डन नामक आचार्यके द्वारा हुई। इन्हीं विद्यामण्डनके शिष्य विवेकधीर गणि नामके विद्वानने 'शत्रुंजय-तीर्थोद्धारप्रबन्ध' नामका संस्कृत ग्रन्थ लिखा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। जिस दिन प्रतिष्ठा हुई है, उसके ठीक दूसरे दिन यह प्रबन्ध बनकर समाप्त हुआ है। लेखक इस उत्सवमें केवल मौजूद ही नहीं थे बल्कि उन्होंने इस उद्धारकार्यमें शिल्पशास्त्रीय (इंजीनियर) का काम भी किया था। वे शिल्पशास्त्रके अच्छे ज्ञाता थे, इस कारण उन्हींकी देखरेखमें कारीगरोंका काम होता था। प्रबन्धमें सब मिलाकर २६२ पद्य हैं। रचना सुन्दर है और इतिहासकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वकी है। इसमें कर्मासाहके उद्धारका विस्तृत विवरण दिया है और उस समयके गुजरात तथा मेवाड़के राजाओंके और दिल्ली तथा गुजरातके बादशाहोंके नाम और उनकी वंशावलियाँ भी दी हैं। यद्यपि वे निश्चित इतिहासके अनुसार सर्वथा शुद्ध नहीं हैं; परन्तु फिर भी कामकी हैं। यह मूल प्रबन्ध केवल ३२ पृष्ठोंमें आ गया है। शेष भाग सम्पादक महाशयका लिखा हुआ है और उसके लिखनेमें खूब परिश्रम किया गया है। प्रारंभके ३८ पृष्ठोंमें उपोद्घात है, जिसमें शत्रुंजयतीर्थका परिचय, उसकी वर्तमान अवस्था, उसका महत्त्व, आज तक उसके जितने उद्धार हुए हैं उन सबका संक्षिप्त इतिहास और ग्रन्थकर्त्ता आदिके विषयमें अनेक ज्ञातव्य बातें लिखी हैं। इसके बाद लगभग ३० पृष्ठोंमें मूल ग्रन्थका संक्षिप्त सार लिख दिया है जिससे केवल हिन्दी जाननेवाले पाठक भी मूल ग्रन्थका मर्म समझ सकते हैं। परिशिष्टमें मुख्य मन्दिरकी प्रशस्ति, और दो प्रतिमाओंके नीचेके लेख दे दिये हैं। इस तरह यह ग्रन्थ सुचारुरूपसे सम्पादित किया गया है। इस ग्रन्थके पढ़नेसे कई ऐसी बातें मालूम होती हैं जो जैनधर्मकी समय समयकी अवस्थाका अध्ययन करनेवालोंके लिए उपयोगी होंगी। उस समय जैनसाधुओंके आचरणमें इतनी शिथिलता आगई थी कि वे शिल्पशास्त्रियोंका तथा मन्दिरोंके बनवाने आदिका काम भी करते थे और इसमें जो 'आरंभजनित' दोष लगते हैं उनकी ओरसे लापरवा होगये थे। जान पड़ता है प्रतिष्ठा आदि कराना तो इससे भी कई सौ वर्ष पहलेसे श्वेताम्बर साधुओंके लिए जायज हो गया था और शायद उन्हींकी देखादेखी हमारे यहाँके भट्टारक भी—जो अपनेको मुनि कहते हैं—प्रतिष्ठायें कराने लगे थे। पर हमारी समझमें यह कार्य दोनों ही सम्प्रदायके महाव्रती साधुओंके लिए निषिद्ध होगा। साधुओंमें मंत्रादिकी आराधना करना और ज्योतिःशास्त्रसे फलित निकालना आदि कार्य भी प्रचलित थे। जिस समय यह उद्धार हुआ उस समय अनेक गच्छोंके आचार्य इकट्ठे हुए थे और उन सबने मिलकर एक प्रतिज्ञालेख लिखा था कि "शत्रुंजयके ऊपरका मूल गढ़, और आदिनाथका मुख्य मंदिर समस्त जैनोंके लिए है और बाकी सब देवकुलिकायें भिन्न भिन्न गच्छवालोंकी समझनी चाहिए। यह तीर्थ सब जैनोंके लिए एक समान है। एक व्यक्ति इस पर अपना अधिकार नहीं जमा सकता। इत्यादि।" इस लेख पर बहुतसे आचार्योंकी सही है। इससे मालूम होता है कि उस समयसे पहले जुदा जुदा गच्छके श्वेताम्बर साधुओंमें तीर्थके स्वामित्वके सम्बन्धमें झगड़े होते होंगे और आजकलके श्रावकोंके समान वे महाव्रती होकर भी आपसमें द्वेषभाव रखते होंगे। श्रावकोंके विषयमें इतना ही मालूम होता है कि उनके धर्मज्ञानकी सीमा गुरुकी भक्ति करना या उसकी आज्ञा पालन करना, इससे आगे न थी। गुरुओंकी प्रेरणासे वे मन्दिरादि बनवाने और संघ निकालनेमें लाखों करोड़ों रुपया खर्च कर देते थे। ये सब ऐसी बातें हैं, जिनपर विचार करनेकी आवश्यकता है। श्रीमान् मुनि जिनविजयजी ऐसे ऐसे ऐतिहासिक ग्रन्थ प्रकाशित करके जैनसाहित्यका बहुत बड़ा उपकार कर रहे हैं। ग्रन्थका मूल्य लागतसे कम ही होगा, अधिक नहीं।

७—शत्रुंजयतीर्थरास। आनन्दकाव्यमहोदधिका चौथा मौक्तिक। जैनग्रन्थोंको छपाछपाकर मिट्टीके मोल बेचनेवाले बम्बईके 'सेठ देवचन्द

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लालचन्द् पुस्तकोद्धार फण्ड ' की ओरसे यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। क्राउन सोलह पेजी साइजके ७५० पृष्ठके इस कपड़ेकी पक्की जिल्दवाले ग्रन्थका मूल्य केवल बारह आने है। इतने सस्ते दामोंमें शायद ही कोई संस्था पुस्तकप्रचार करती होगी। इसके लिए संस्थाके संचालकोंको जितना धन्यवाद दिया जाय उतना थोड़ा है। विक्रम संवत् १७५५ में जिनहर्षगणि नामके एक श्वेताम्बरसाधुने इस रासकी रचना की है। ग्रन्थकी भाषा गुजराती है। इसका सम्पादन 'शास्त्रविशारद जैनाचार्य योगनिष्ठ श्रीबुद्धिसागरसूरि' ने किया है। आपने पुस्तकके प्रारंभमें कोई ६४ पृष्ठकी विस्तृत प्रस्तावना लिखी है। सूरि महाशयकी पदवियोंने हमें प्रस्तानाको पढ़नेके लिए विवश किया; परन्तु पढ़कर हमें निराश होना पड़ा। हम उसमें कोई बात ऐसी न पा सके जिसमें उनकी सदसद्विवेचनाशक्तिका या सत्यान्वेषणशीलताका परिचय मिलता। ग्रन्थकर्त्ताकी प्रत्येक बातको आपने निर्भ्रान्त समझा है; इतना ही नहीं बल्कि उसकी भ्रान्तिको सत्य सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है। यह गुजराती रासा धनेश्वरसूरिके संस्कृत 'शत्रुंजयमाहात्म्य' नामक विशाल संस्कृत ग्रन्थका प्रायः अनुवाद है। इसमें और मूल ग्रन्थमें शत्रुंजयकी अमर्यादित प्रशंसा की है और उसके माहात्म्यको बढ़ानेके लिए बहुतसी झूठी सच्ची कथायें भी गढ़ डाली हैं; परन्तु सम्पादक महाशयकी दृष्टिमें वे सोलह आने सच्ची जँची हैं। धनेश्वरसूरिके विषयमें कहा गया है कि उन्होंने विक्रम संवत् ४७७ में वल्लभीपुरके राजा शिलादित्यकी प्रार्थनासे यह ग्रन्थ बनाया था; परन्तु यह निरी गप्प है। मूल शत्रुंजय महात्म्यमें कुमारपाल, बाहडमंत्री, वस्तुपालमंत्री और समराशाहके उद्धारों तकका वर्णन किया है। इनमेंसे सबसे पिछले समराशाहका किया हुआ उद्धार विविधतीर्थकल्प आदि अनेक ग्रन्थोंके कथनानुसार वि० सं० १३७१ में हुआ है, अत एव शत्रुंजयमाहात्म्यके कर्त्ता धनेश्वरसूरि इसके बाद ही किसी समय हुए होंगे, यह सुनिश्चित है। उन्हें वि० सं० ४७७ में प्रथम शिलादित्यके समयमें सिद्ध करनेके लिए भूमिकाके लेखक महाशयको बड़ी बड़ी उलझनोंमें पड़ना पड़ा है और उनसे सुलझनेके लिए अनेक ओंधी-सीधी सच्ची-झूठ बातें लिखनी पड़ी हैं। धनेश्वर सूरिने शिलादित्यको प्रतिबोधित करके जैन बनाया और बौद्धोंको हराकर उन्हें सौराष्ट्र देशसे निकाल दिया; लेखक इस बातको भी सच मानते हैं और चन्द्रप्रभसूरिकृत प्रभावकचरितमें लिखा है कि मल्लवादि नामके आचार्यने शिलादित्यकी सभामें बौद्धोंको हराया और उसे जैन बनाया, सो इसमें भी कोई सन्देह नहीं करते ! जान पड़ता है, मल्लवादिकी कथाको ही किसीने धनेश्वर सूरिका माहात्म्य बढ़ानेके लिए उनके साथ जोड़ दिया है। धनेश्वर सूरिका शत्रुंजयमाहात्म्य बड़ा ही विचित्र है। इसको पढ़ते समय ऐसा नहीं मालूम होता कि हम कोई जैनग्रन्थ पढ़ रहे हैं। यह ब्राह्मणोंके बद्री, केदार, प्रभास आदि तीर्थोंके माहात्म्यका बिलकुल अनुकरण मालूम होता है। शत्रुंजयकी खूब अनाप-शनाप महिमा गाई गई है। कुछ श्लोक देखिए:—

नास्त्यतः परमं तीर्थं सुरराज जगत्त्रये।
यस्यैकवेलं नाम्नापि श्रुतेनांहः क्षयो भवेत् ॥ ५६
कथं भ्रमासि मूढात्मन् धर्मो धर्म इति स्मरन्।
एकं शत्रुंजयं शैलमेकवेलं निरीक्षय ॥ ६१
बाल्येऽपि यौवने वार्ध्ये तिर्यक्जातौ च यत्कृतम्।
तत्पापं विलयं याति सिद्धाद्रेः स्पर्शनादपि ॥ ८१
तावद्गर्जन्ति हत्यादिपातकानीह सर्वतः।
यावच्छत्रुंजयेत्याख्या श्रूयते न गुरोर्मुखात् ॥ ९४
न भेतव्यं न भेतव्यं पातकेभ्यः प्रमादिभिः।
श्रूयतामेकवेलं श्रीसिद्धक्षेत्रगिरेः कथा ॥ ९५
एकैकस्मिन् पदे दत्ते पुण्डरीकगिरिं प्रति।
भवकोटिकृतेभ्योऽपि पातकेभ्यः स मुच्यते ॥ ७८

अर्थात् शत्रुंजयके समान श्रेष्ठ तीर्थ तीनों जगतमें कोई नहीं है जिसके एक बार नाम सुनने

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

मात्रसे पापोंका क्षय हो जाता है । अरे मूर्खो, धर्मधर्मका स्मरण करके क्यों भटक रहे हो? शत्रुंजय तीर्थके केवल एक बार दर्शन कर डालो, बस । बचपन, जवानी, बुढ़ापा और पशुपर्यायमें किये हुए पाप इस तीर्थके स्पर्शमात्रसे नष्ट हो जाते हैं । हत्यादि पाप तभी तक छोड़े जाते हैं, जब तक गुरुके मुँहसे 'शत्रुंजय' इतना शब्द नहीं सुन पाया है । अरे प्रमादियो, पापोंसे मत डरो, मत डरो, केवल एक बार शत्रुंजयकी कथा सुन लो । शत्रुंजयकी यात्राके लिए एक एक पैर बढ़ानेसे करोड़ों भवोंके पापोंसे प्राणी मुक्त होता चला जाता है !

एक जगह लिखा है कि "चार हत्याके करनेवाले परस्त्रीगामी और अपनी बहिनके साथ व्यभिचार करनेवाले चन्द्रशेखर राजाका भी इस तीर्थसे उद्धार हुआ है !"

पाठक देखें कि इस प्रकारकी महिमा जैनधर्मकी कर्मफिलासफीसे कितना सम्बन्ध रखती है; और यह भी सोचें कि इस तरहके उपदेश लोगोंके हृदयमें पापोंकी ग्लानि कितनी कम कर देंगे । जब शत्रुंजयके नाम मात्रसे बड़े बड़े पाप कट जाते हैं, तब फिर पापोंसे डरनेकी आवश्यकता ही क्या है ?

नीचेके श्लोकोंमें शिथिलाचारी गुरुओंकी पूजाका उपदेश दिया है, जिससे साफ मालूम होता है कि ग्रन्थकर्त्ता महाराज पाँचवीं सदीके नहीं किन्तु चौदहवीं शताब्दिके लगभगके कोई जती हैं, जो अपनी और अपने भाइयोंकी—गुणहीन शिथिलाचारी होने पर भी—पूजा करानेके लिए व्याकुल थे ।

सहस्रलक्षसंख्यातैर्विशुद्धैः श्रावकैरिह ।
यद्भोजितैर्भवेत्पुण्यं मुनिदानात् ततोऽधिकम् ॥
यादृशस्तादृशो वापि लिङ्गी लिङ्गेन भूषितः ।
श्रीगोतम इवाराध्यो बुधैर्बोधसमन्वितैः ॥
वर्तमानोऽपि वेषेण यादृशस्तादृशोऽपि सन् ।
यतिः सम्यक्त्वकलितैः पूज्यः श्रेणिकवत् सदा ॥
गुरोराधानात्स्वर्गो नरकश्च विराधनात् ।
द्वे गती गुरुतो लभ्ये गृह्णीतैकां निजच्छया ॥

अर्थात् हजारों लाखों विशुद्ध श्रावकोंके भोजन करानेसे जो पुण्य होता है, उससे अधिक एक मुनिको दान देनेसे होता है । चाहे जैसा मुनि हो, यदि वह मुनिका वेष धारण कर रहा है, तो ज्ञानी श्रावकोंको चाहिए कि उसकी भगवान् गौतम गणधरके समान आराधना करें । यति जैसा तैसा भी हो; परन्तु यदि वह अपने वेषमें वर्तमान है अर्थात् उसने साधुओंके कपड़े पहन रक्खे हैं तो वह सम्यक्त्वसहित पुरुषोंके द्वारा राजा श्रेणिकके समान सर्वदा पूज्य है ! गुरुकी आराधनासे स्वर्ग मिलता है और विराधनासे नरक; इस तरह ये दो गति गुरुओंसे प्राप्त होती हैं । इनमेंसे इच्छानुसार किसी एकको गृहण कर लो । बुद्धिमान् पाठकोंको यह समझनेमें विलम्ब न होगा कि गुरुओंकी यह महिमा बतलानेमें ग्रन्थकारका क्या अभिप्राय है ।

इस ग्रन्थकी कथाओंके तथा भविष्य प्राणियों आदिके सम्बन्धमें भी बहुत सी बातें लिखी जा सकती हैं; परन्तु इस छोटीसी आलोचनामें उनके लिए स्थान नहीं है । श्वेताम्बर सम्प्रदायके विद्वान् सज्जनोंसे हमारी प्रार्थना है कि वे अपने यहाँके इस प्रकारके साहित्यकी परीक्षा करें और समयके अनुकूल अब लोगोंमें वचनप्रधानताकी जगह परीक्षा प्रधानताके भावोंका प्रचार करें। इस प्रकारके साहित्यके जैनधर्मने मूल सिद्धान्तोंको ढँक रक्खा है !

८ तीस चौवीसी पूजा । सम्पादक, पं० मुन्नालालजी काव्यतीर्थ और प्र०, बाबू दुलीचन्द जैन, जिनवाणीप्रचारक कार्यालय, ६२।२—१ बीडनस्ट्रीट कलकत्ता । पृष्ठसंख्या ३७२। मूल्य २।)रु०। काशीनिवासी बाबू वृन्दावनजीके नामसे जैनसमाज सुपरिचित है । आपका वर्तमान चौवीसी पाठ प्रकाशित हो चुका है । अब यह तीस चौवीसी पाठ प्रकाशित हुआ है । इसमें भूत-भविष्यत्-वर्तमानकालसम्बन्धी भरत ऐरावत विदेह आदिके ७२० तीर्थ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करोंकी पूजायें हैं। इसके एक पद्यसे मालूम होता है कि यह संस्कृतके किसी पूजापाठके आधारसे बनाया गया है। यों तो वृन्दावनजीकी कविता अच्छी समझी जाती है, पर वे अपनी कवितामें शब्दोंको खूब ही तोड़ते—मरोड़ते थे। इस पाठमें हम देखते हैं कि उक्त दोष और भी अधिक बढ़ा—चढ़ा हुआ है। यह प्रति कविजीकी खुदकी लिखी हुई प्रति-परसे शुद्ध की गई है। फिर भी थोड़ी बहुत अशु-द्धियाँ रह गई हैं। एक कमी यह भी रह गई है कि इसमें जो कमलबद्ध, धनुर्बद्ध आदि चित्र-काव्य थे, उनके चित्र नहीं बनवाये गये।

९ **हरिवंशपुराण**। लेखक, जीवराज गोतम-चन्द दोसी। प्र०, नाथारंगजी जैनोन्नति फण्ड, शोलापुर। डिमाई अठपेजीके ४५० पृष्ठ। मूल्य २॥)। पुन्नाटसंघीय श्रीजिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराणके आधारसे यह ग्रन्थ मराठी भाषामें लिखा गया है। इसमें मूलका आलंकारिक वर्णन छोड़कर केवल कथाभाग लिया गया है।

बहुतसे लोग इस प्रकृतिके होते हैं कि वे आलं-कारिक और शृंगारपूर्ण-वर्णनसे शीघ्र ही ऊब जाते हैं और इस समयमें ऐसे लोगोंकी संख्या बढ़ती जाती है। उनके लिए बृहद्ग्रन्थोंके इस प्रकारके संक्षिप्त या संशोधित संस्करणोंकी आवश्यकता है। केवल इतिहासकी और तथ्यसंग्रहकी रुचि रखनेवालों-के लिए भी ऐसे संस्करण बहुत उपयोगी होते हैं। अवश्य ही इनका सम्पादन बहुत सावधानीसे होना चाहिए। मूलकी कोई महत्त्वकी बात छोड़ी नहीं जानी चाहिए और मूलके भावोंका कोई परिवर्तन भी न किया जाना चाहिए। इस संस्करणको अच्छी तरह पढ़ सकनेका हमें अवकाश नहीं मिल सका, तो भी हम लेखक महाशयसे परिचित हैं, उनके प्रयत्नमें प्रमादोंकी बहुत कम संभावना है। इसमें यदुवंशकी उत्पत्तिका वर्णन हमने पढ़ा तो मालूम हुआ कि यदुराजके शूर और सुवीर नामके दो पुत्र थे। शूरके अन्धकवृष्टि आदि दश पुत्र हुए और सुवीरके भोजकवृष्टि आदि अनेक पुत्र हुए। अन्धकवृष्टिके पुत्र समुद्रविजय, वसुदेव आदि हुए और भोजकवृष्टिके उग्रसेन, महासेन आदि हुए। आगे उग्रसेनकी कन्या राजीमतीके साथ समुद्र-विजयके पुत्र नेमिनाथ भगवानका विवाह होना निश्चित हुआ। अर्थात् शूर और सुवीर इन दोनों सगे भाइयोंके पौत्रोंके पुत्र और कन्या उस समयकी नीतिके अनुसार परस्पर विवाहसम्बन्धमें बद्ध हो सकते थे! इस तरहका सम्बन्ध होना उस समय जायज था। मामाकी लड़कीके साथ सम्बन्ध होनेके तो हरिवंशपुराणमें कई उदाहरण हैं। ये ऐसी बातें हैं जिनपर विचार होनेकी आवश्यकता है। अब पुराणग्रंथोंको केवल पुण्यलाभकी दृष्टिसे ही नहीं पढ़ना चाहिए। उनमेंसे कुछ तथ्योंका आविष्कार भी करना चाहिए। जो लोग इन विवाहादिसंबंधी रूढ़ि-योंको धर्मके स्थायी सिद्धान्त मानते हैं, और आठ आठ सोलह सोलह गोत्रोंको टालकर ब्याह करनेमें ही परमधर्म मानते हैं, वे इन पुराणपुरुषोंके दृष्टान्तों पर एक दृष्टि डालनेकी कृपा करें। ग्रन्थका मूल्य कम है। मराठी जाननेवालोंको अवश्य मँगाना चाहिए।

१० **महाराणा राजसिंह**। ले०, पं० राम-प्रसाद मिश्र और प्रकाशक, नाट्यग्रन्थप्रसारक मण्डल, ए. बी. रोड कानपुर। मूल्य दश आने। इसकी भूमिकामें लिखा है कि 'इस ग्रन्थका कथासूत्र नितान्त ऐतिहासिक आधार पर है;' परन्तु जान पड़ता है लेखक महाशय उपन्यासोंको भी 'नितान्त इतिहास' समझते हैं। यही कारण है जो स्वर्गीय बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायके उपन्या-सके आधार पर लिखे हुए इस नाटकको भी वे नितान्त ऐतिहासिक मानते हैं। बंकिम बाबूके 'राजसिंह' में यद्यपि इतिहास है; परन्तु वह नितान्त इतिहास नहीं है। उसमें अनेक पात्र और अधिकांश घटनायें बिलकुल कल्पित हैं और वे उपन्यासको मनोरम तथा सुन्दर बनानेके लिए लिखी गई हैं। लेखक महाशयने यह भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लिखनेकी कृपा नहीं की कि इस नाटकका मूल आधार बंकिम बाबूका राजसिंह है। नाटकके लगभग ५० पृष्ठ हमने पढ़े। उत्तेजना और अन्ध अभिमान बढ़ानेवाले भावोंके सिवाय नाटकमें और कोई विशेषता नहीं। स्वाभाविकताका अभाव है। मनोगत भावोंके चित्रण करनेमें कवि नितान्त असमर्थ है। युवती चञ्चलकुमारी वृद्ध राजसिंहके चित्रको देखकर उन पर मुग्ध हो जाती है और थोड़े ही समयमें वह विरहिणियोंके समान 'सर्द आहें' खींचने लगती है, यह बात किसी रंगमंच पर तो नहीं, रासधारियोंके तमाशोंमें अवश्य अच्छी मालूम हो सकती है। मुसलमानोंके प्रति नाटककारके हृदयमें जरा भी सहानुभूति नहीं है और इस कारण वह किसी भी मुसलमान पात्रको अच्छे रूपमें खड़ा नहीं कर सका है।

११ श्रीवर्धमानचरित्र। लेखक, जैन मुनि पं० ज्ञानचन्द्रजी और प्रकाशक मेहरचन्द लक्ष्मणदास संस्कृत पुस्तकालय, लाहौर। आकार क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ संख्या १३६। कपड़ेकी जिल्द। मूल्य बारह आने। चरित्र हिन्दीमें लिखा गया है और निर्णयसागर प्रेसमें सुन्दरताके साथ छपा है। लेखक स्थानकवासी सम्प्रदायके साधु हैं, अतएव उनका इसे श्वेताम्बर सूत्रोंके अनुसार लिखना स्वाभाविक है; परन्तु फिर भी इसमें ऐसी बातें नहीं लिखी गई हैं जो दूसरे सम्प्रदायके लोगोंको खटकनेवाली हैं। लिखते समय उन्होंने संभवता असंभवताका भी ख्याल रक्खा है। श्वेताम्बरसूत्रोंके अनुसार महावीर भगवान् पहले एक ब्राह्मणीके गर्भमें आये थे और फिर वहांसे एक देवके द्वारा स्थानान्तरित होकर महाराणी त्रिशलाके गर्भमें पहुँचाये गये थे। गर्भापहरणकी यह बात श्वेताम्बर—स्थानकवासी सम्प्रदायोंमें बहुत ही प्रसिद्ध है; परन्तु इस चरित्रमें इसे असंभव समझकर छोड़ दिया गया है। यही लिखा गया है कि भगवान् त्रिशलाके गर्भमें आये और ९ मास ७॥ दिनरात व्यतीत होने पर अवतरित हुए। गर्भावस्थामें माताको कष्ट न होनेके लिए भगवानने जो विचारादि किये थे और तदनुरूप क्रियायें की थीं, उनका भी इसमें उल्लेख नहीं है। लेखकने इस बातको भी स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार किया है कि 'भगवानके पास चीरमात्र भी वस्त्र न था। यह दूसरी बात है कि वे लोगोंको ऐसे मालूम होते थे कि वस्त्र पहने हुए हैं।' इन सब बातोंसे मालूम होता है कि लेखक स्वाधीनचेता हैं। पुस्तकका आधेसे अधिक भाग बारह व्रतोंके, भावनाओंके तथा दूसरे धार्मिक सिद्धान्तोंके वर्णनमें घिरा हुआ है, जो स्वाध्यायप्रेमियोंके कामका है, और इसका कारण यह है कि चरित्र ऐतिहासिक नहीं किन्तु धार्मिक दृष्टिसे लिखा गया है और अभीतक लिखे गये हिन्दी महावीरचरित्रोंसे बहुत कुछ अच्छा है। जैनोंके तीनों सम्प्रदायके लोग इससे लाभ उठा सकते हैं। इसमें सम्प्रदायभेदकी बातें बहुत ही कम हैं। भूमिकासे मालूम हुआ कि लेखक इसको अपूर्ण छोड़कर ही स्वर्गवास कर गये और इसका शेष भाग उनके गुरु उपाध्याय आत्मारामजीने पूर्ण किया।

१२ प्राचीन कीर्ति वा सप्ताश्चर्य। ले, पं० शिवनारायण द्विवेदी और प्र०, हरिदास एण्ड कम्पनी, कलकत्ता। पृष्ठसंख्या ८०। मूल्य आठ आने। इसमें मिसरके पिरामिड, बाबिलनका उद्यान, अलम्पसका जुपिटर, डायनाका मन्दिर, मासोलियमकी समाधि, सिकन्दरियाका दीपस्तम्भ, और रोडस द्वीपकी अपोलोकी मूर्ति, पृथ्वीके इन सात प्रधान आश्चर्योंका और चीनका शीशमहल, चीनकी बड़ी दीवार, आगरेका ताजमहल और टेम्स नदीकी सुरंग इन चार उपाश्चर्योंका सचित्र वर्णन है। पृथ्वीमें कैसी कैसी विलक्षण चीजें हैं, यह जाननेकी इच्छा रखनेवालोंको यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए। वर्णन साधारण है। उसमें कहीं कहीं लेखक महाशयने जो अपनी सम्मतियाँ शामिल की हैं उनमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न गंभीरता है और न कोई विशेषत्व । भूमिकाके एक पैरेमें आप कुछ कह रहे हैं और दूसरेमें कुछ। पुस्तकमें यह लिखना आपने आवश्यक न समझा कि ये विवरण कौनसी पुस्तकके आधारसे लिखे गये हैं।

१३-१४ हिन्दी साहित्य प्रचारक ग्रन्थमालाकी पुस्तकें। नरसिंहपुर (सी. पी.) के श्रीयुत सेठ नाथूरामजी रेजाने उक्त नामकी ग्रन्थमालाके निकालनेका प्रयत्न किया है। मालाके पहले दो पुष्प हमें समालोचनार्थ प्राप्त हुए हैं। पहला है, **गुरु शिष्यसंवाद**। इसमें स्वामी विवेकानन्द और उनके कुछ शिष्योंका वार्तालाप है। पृष्ठ संख्या ५४। मूल्य चार आने। दूसरा पुष्प है **आर्थिक सफलता**। यह अँगरेजीकी 'फाय नानशियल सकसेस' नामक पुस्तकके गुजराती अनुवादके आधारसे लिखी गई है। पृष्ठसंख्या ९= । मूल्य छह आने । दोनों पुस्तकोंके अनुवाद कर्ता श्रीयुत शिवसहाय चतुर्वेदी हैं । दोनों पुस्तकोंकी छपाई उत्तम है। कागज भी अच्छा लगा है।

१५-१६ हिन्दी-गौरव ग्रन्थमालाकी पुस्तकें। हम अपने मित्र पं० उदयलालजी काशलीवालकी इस ग्रन्थमालाका परिचय अपने पाठकोंको पहले दे चुके हैं। इसके पाँचवें और छठे पुष्प हाल ही प्रकाशित हुए हैं । पाँचवेंका नाम **विवेकानन्द नाटक है**। यह मराठीके प्रसिद्ध लेखक ए. बी. कोल्हटकरके ग्रन्थका अनुवाद है । अमेरिकामें जाकर हिन्दूधर्मका शंखनाद करनेवाले स्वामी विवेकानन्दको मुख्य पात्र मानकर इस नाटकका कथानक तैयार किया गया है। कल्पना सुन्दर है। हास्यविनोद और मनोरंजनकी इसमें यथेष्ट सामग्री है। लेखक हास्यरसके सिद्धहस्त लेखक जान पड़ते हैं। यह नाटक मराठी रंगमंचपर खेला जा चुका है। पृष्ठसंख्या १५२ और ५ चित्र। मूल्य एक रुपया। छठे पुष्पका नाम है, **स्वदेशाभिमान**। यह एक छोटी सी पुस्तक है, पर बड़ी अच्छी है। एक मराठी पुस्तकका अनुवाद है। इसमें विदेशोंके ऐसे २०–२५ स्त्री पुरुषोंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है, जिन्होंने अपनी जन्मभूमिकी रक्षाके लिए अपने सर्वस्वका अर्पण कर दिया था। ऐसी पुस्तकोंका घर घर प्रचार होना चाहिए। मूल्य चार आने।

१७ सर्वियाका इतिहास। लेखक, झालरापाटननरेश राजराना श्रीमान् भवानीसिंहजी बहादुर। प्र०, राजपूताना हिन्दीसाहित्य सभा, झालरापाटन। पृष्ठसंख्या ८०। मूल्य पाँच आने। हमारे पाठक जानते हैं कि गतवर्ष जैनहितेच्छुके सम्पादक श्रीयुत वाडीलालजी, सेठ विनोदीरामजी बालचन्दजी और रायबहादुर सेठ कस्तूरचन्दजी आदिने हिन्दीके ग्रन्थोंको सुलभ मूल्यमें प्रकाशित करनेके लिए लगभग १० हजार रुपयेका चन्दा करके यह सभा स्थापित की थी। यह पुस्तक उसीकी ओरसे प्रकाशित हुई है। सभाके लिए यह बड़े गौरवकी बात है कि उसे एक नरेशकी लिखी हुई सुन्दर पुस्तकको प्रकाशित करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। पुस्तक छोटी है, पर सर्वियाका स्थूल इतिहास जाननेके लिए बहुत अच्छी है। युद्धकी हालतपर विचार करनेके लिए सर्वियाकी भीतरी बातोंको समझनेमें इससे बहुत सहायता मिलेगी।

१८ लोकमान्य तिलकके स्वराज्य पर १२ व्याख्यान और जमानतका मुकद्दमा। प्रकाशक, गंगाधर हरि खानवलकर, ग्रन्थप्रकाशक समिति बनारस। पृष्ठसंख्या २५०। मूल्य एक रुपया। विषय नामहीसे स्पष्ट है। देशभक्त तिलक महाशयके विचार प्रत्येक भारतवासीको पढ़ने चाहिए और स्वराज्यके स्वरूपको समझ लेना चाहिए । पुस्तक अच्छे समयमें प्रकाशित की गई है।

नीचे लिखी पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकार की जाती हैं:—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१ जैनगजल गुलचमन बहार प्र०, भैरूंलाल नौ रतनलाल बोहरा, लाखन कोटड़ी अजमेर।

२ पाँचवीं रिपोर्ट, पद्मावती परिषत्। प्र०, पं० वंशीधरजी शास्त्री, शोलापुर।

३ साचा सुखनो उपाय। ले०, ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी और प्र०, जैनविजयप्रेस, सूरत।

४ सुमतिकुमतिमोहअन्धकार नाटक। प्र०, बाबू फूलचन्द जैन, शिकोहाबाद, मैनपुरी।

५ बारहमासा तथा स्तवनसंग्रह। प्र०, आत्मानन्द जैनसभा, अम्बाला शहर।

६. जैन इतिहास अंक २। प्र०, आत्मानन्द ट्रेक्ट सुसाइटी, अम्बाला शहर।

७ श्राविकाधर्मदर्पण, ८ जैनशिक्षण पाठमाला, ९ जम्बूगुणरत्नमाला। प्र०, कुँवर मोतीलाल रांका, जैनपुस्तकप्रचारक कार्यालय, ब्यावर (अजमेर)।

१० सदाचाररक्षा, प्रथमभाग। ले०, सेठ जवाहरलालजी जैनी। प्र०, आत्मानन्द जैनपुस्तक प्रकाशक मण्डल, नौघरा, देहली।

११ वेदमीमांसा। ले०, पं० पुत्तूलाल जैन। प्र०, जैनमित्रकार्यालय, सूरत।

१२ मिथ्यातमोध्वंसार्क। जैनमित्रमंडली देहलीका ट्रेक्ट नं० १। प्र०, लालाश्यामलालजी कागजी, चावड़ी बाजार, देहली।

१३ वार्षिक विवरण, जैनशिक्षाप्रचारक सोसाइटी, पहाड़ी धीरज, देहली। प्रकाशक, मंत्री, बनारसीदासजी जैन।

आदिपुराणका अवलोकन।

(लेखक—श्रीयुत **बाबू सूरजभानजी वकील**।)

पाठकोंको भगवज्जिनसेन और गुणभद्राचार्यकृत आदिपुराणका अधिक परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं। यह बहुत ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है और जैनधर्मके पुराणग्रन्थोंमें यही सबसे अधिक महत्त्वकी दृष्टिसे देखा जाता है। यह 'महापुराण' नामक ग्रन्थका पूर्वभाग है। इसके ४२ पर्व जिनसेन स्वामीके और शेष पाँच पर्व गुणभद्र स्वामीके बनाये हुए हैं। उपलब्ध पुराणग्रन्थोंमें पद्मपुराण और हरिवंशपुराण ये दो ही पुराण ऐसे हैं, जो इससे पहलेके बने हुए हैं; परन्तु केवल आदिनाथ भगवान्के चरित्रको विस्तारसे बतलानेवाला तो यही सबसे पहला पुराण है। सुप्रसिद्ध मंत्री और सेनापति चामुण्डरायका बनाया हुआ 'त्रिषष्टिलक्षणमहापुराण' नामका एक कनड़ी भाषाका ग्रन्थ है। उसमें चौबीसों तीर्थकरोंके चरित्र लिखे गये हैं। उसके प्रारंभमें लिखा है कि "इस पुराणको पहले कूचि भट्टारक, फिर नन्दि मुनीश्वर, फिर कविपरमेश्वर और तत्पश्चात् जिनसेन-गुणभद्रस्वामी, इस प्रकार परम्परासे कहते आये हैं और उन्हींके अनुसार मैं भी कहता हूँ।" इससे मालूम होता है कि आदिपुराणसे पहले कूचि, नन्दि और कविपरमेश्वरके बनाये हुए इसी विषयके ग्रन्थ थे। कवि परमेश्वर या कवि परमेष्ठीका उल्लेख तो स्वयं जिनसेन स्वामीने भी किया है। गुणभद्रस्वामीने भी उत्तरपुराणकी प्रशस्तिमें स्वीकार किया है कि कविपरमेश्वरकी बनाई हुई 'गद्यकथा' इस आदिपुराणकी माता है—'कविपरमेश्वरनिगदितगद्यकथामातृकं पुरोश्चरितम्।' अर्थात् इस आदिपुराणके पहले कविपरमेश्वरका बनाया हुआ कोई ग्रन्थ था, जिसके आधारसे यह पल्लवित करके बनाया गया है; परन्तु अब उक्त ग्रन्थोंमेंसे कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, इसलिए यह निश्चय नहीं हो सकता है कि आदिपुराणमें उनकी अपेक्षा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्या विशेषता है—इसमें परम्परासे चला आया हुआ अंश तो कितना है और कवियोंके द्वारा पल्लवित—परिवर्धित किया हुआ अंश कितना है ।

गुणभद्रस्वामीने उत्तरपुराणकी समाप्ति शक संवत् ८२० (विक्रम संवत् ९५५) में की है। अतएव आदिपुराण इसके कुछ पहले बन चुका था ।

मैं इन दिनोंमें इसी प्रसिद्ध ग्रंथका स्वाध्याय कर रहा हूँ । यह स्वाध्याय बहुत बारीकीसे गहरी दृष्टि डालकर, किया जा रहा है । स्वाध्याय करते समय जो जो बातें मुझे सोचने-विचारनेकी, चर्चा करनेकी मालूम होती हैं उनका नोट भी मैं करता जाता हूँ। इन नोटोंका मेरे पास एक अच्छा संग्रह हो गया है। अब मैं चाहता हूँ कि इस संग्रहमेंसे कुछ महत्त्वके नोटोंको समाजके विद्वानोंके समक्ष उपस्थित करूँ, जिससे उन पर अनेक दृष्टियोंसे विचार होवे, और जनताकी प्रवृत्ति सत्यान्वेषणकी ओर अधिकाधिक बढ़े ।

१

सर्वसाधारणका यह विश्वास है कि पुराणादि कथाग्रंथोंमें जो कुछ लिखा गया है, उसका अक्षर अक्षर केवलीकथित है । ये सबके सब ग्रंथ भगवान्की दिव्यध्वनिके द्वारा ही प्रकट हुए हैं। परन्तु इस पुराणका स्वाध्याय करनेसे यह बात ठीक नहीं मालूम होती, किन्तु यह प्रकट होता है कि ग्रन्थरचनामें ग्रन्थकर्ताओंको बहुत कुछ स्वाधीनता रहती है । वे गुरुपरम्परासे या शास्त्रपरम्परासे चले आये हुए कथासूत्रोंसे केवल नींवका काम लेते हैं, शेष सारी इमारतकी रचना करनेमें वे स्वतंत्र रहते हैं । इस इमारतके स्रष्टा स्वयं वे ही होते हैं। उसको सुन्दर, सरस, प्रभावोत्पादक बनाना यह उनकी प्रतिभाका काम है । जिसकी प्रतिभा जितनी अधिक उज्ज्वल होती है, वह अपनी इमारतको उतनी ही सुन्दर बनाकर दिखला सकता है । यही कारण है जो एक ही कथाको मूलभूत मानकर बनाये हुए दो कवियोंके ग्रन्थोंमें आकाश-पातालका अन्तर हुआ करता है ।

कवि या ग्रन्थकर्ताको इतनी भी स्वाधीनता न हो, तो उसका कवित्व या ग्रन्थकर्तृत्व ही क्या रहे? फिर तो उसमें और एक फोनोग्राफमें कोई फर्क ही नहीं समझना चाहिए,—जैसा सुना वैसा ही कह दिया । कवि अपनी इस स्वाधीनताके कारण ही कवि कहलाता है । इस स्वाधीनताका उपयोग करके वह अपने कथापात्रोंके मुँहसे वेही बातें कहलाता है, जिनका कहलाना उसे अभीष्ट मालूम होता है—जिससे वह अपने ग्रन्थरचनाके उद्देशकी सिद्धि समझता है और जो उसके देशकालके अनुकूल होती हैं । नगर, पर्वत, नदी, स्त्री, पुरुष, बालक, साधु आदिके उन्हीं स्वरूपोंको वह चित्रित करता है जिनका उसके कल्पनाजगतमें संग्रह रहता है, और जिस रूपमें वे उसके नेत्रोंके सामने आया करते हैं । यही कारण है जो दाक्षिणात्यकवियोंके द्वारा बनाये हुए काव्योंमें हम जिस पौराणिक स्त्रीके सुन्दर केशपाशोंको पुष्पोंसे सजा हुआ पाते हैं उसीको उत्तर प्रान्तके कवियोंके काव्योंमें उत्तरीय वस्त्रके भीतर छिपा हुआ देखते हैं । दक्षिणका कवि अपनी नायिकाको साड़ी पहनाता है और उत्तरका घाँघरा।

आदिपुराणके कर्ता जिनसेनस्वामीका ही बनाया हुआ पार्श्वाभ्युदय नामका एक प्रसिद्ध काव्य है । उसको देखनेसे तो यह मालूम होता है कि ग्रन्थकर्ताको मूल कथामें भी परिवर्तन करनेका अधिकार रहता है । इस काव्यमें कमठके जीव शम्बरको —जो कि ज्योतिष्क देव हुआ था—यक्ष, ज्योतिर्भवनको अलकापुरी और यक्षकी वर्षशापको शम्बरकी वर्षशाप मान लिया है । इसके सिवाय शम्बरके पूर्व और वर्तमानके अनेकभावोंको वर्तमानभवके ही रूपमें चित्रित कर दिया है । गरज यह कि कवियों और ग्रन्थकारोंको जो रचनास्वातंत्र्य मिला हुआ है, उससे वे मूल कथामात्रकी रक्षा करके अपनी ओरसे बहुत कुछ लिख सकते हैं । हम अपनी इस बातको पुष्ट करनेके लिए आदिपुराणमेंसे कुछ उदाहरण देंगे ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चौथे कालके प्रारंभमें, जब भगवान् आदिनाथको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था तब, समवसरणसभामें उपस्थित होकर सौधर्मस्वर्गके इन्द्रने भगवानकी स्तुति करते हुए कहा था:—

न भुक्तिः क्षीणमोहस्य तवात्यन्तसुखोदयात् ।
क्षुत्क्लेशबाधितो जन्तुः कवलाहारभुग्भवेत् ॥ ३९
असद्वेद्योदयाद्भुक्तिं त्वयि यो योजयेदधीः ।
मोहानिलप्रतीकारे तस्यान्वेष्यं जरद्धृतम् ॥ ४०॥
असद्वेद्यविषं घाति विध्वंसध्वस्तशक्तिकम् ।
त्वय्यकिंचित्करं मंत्रशक्त्येवापबलं विषम् ॥ ४१ ॥
असद्वेद्योदयो घातिसहकारिव्यपायतः ।
त्वय्यकिंचित्करो नाथ सामग्र्या हि फलोदयः ॥४२
—आदिपुराणपर्व, २५ ।

भावार्थ—हे भगवन्, मोहनीय कर्मके नष्ट हो जानेसे आपके अनन्त सुखका उदय हो गया है, इस कारण आप भोजन नहीं करते हैं। जो जीव भूखके दुःखसे दुखी हैं, वे ही कवलाहार या भोजन किया करते हैं। जो मूर्ख यह कहते हैं कि आपके असातावेदनीयका उदय है, इस कारण आप भोजन भी करते हैं, उन्हें अपनी मिथ्यात्व-रूपी अग्निको शान्त करनेके लिए पुराना घी ढूँढना चाहिए। घातिया कर्मोंके नष्ट हो जानेसे जिसकी शक्ति नष्ट हो गई है, ऐसा असातावेदनीरूप विष आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जिस तरह मंत्रकी शक्तिसे जिसका बल नष्ट हो गया है, ऐसा विष किसीको कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। घातिया कर्मोंकी सहायता नहीं रहनेसे हे नाथ, असातावेदनीका उदय भी आपके लिए आकिंचित्कर है—कुछ प्रभाव डालनेवाला नहीं है। क्योंकि सब सामग्रियोंके एकत्र होनेसे ही फलका उदय होता है।

ये श्लोक स्पष्टतासे बतला रहे हैं कि इनमें जो आक्षेप किया गया है वह श्वेताम्बर सम्प्रदायको लक्ष्य करके किया गया है और उन्हींको इसमें मूर्ख बतलाकर कहा है कि उन्हें मिथ्यात्वकी अग्निको शान्त करनेके लिए पुराना घी ढूँढना चाहिए। परन्तु दूसरे ग्रन्थोंसे यह सिद्ध है कि श्वेताम्बरसम्प्रदायकी उत्पत्ति महावीर भगवान्के निर्वाणके ६–७ सौ वर्ष बाद हुई है। और यह चौथे कालकी आदिनाथ भगवानके समयकी बात है जिसको बीते जैनग्रन्थोंके अनुसार आज करोड़ों वर्ष हो चुके हैं। तब उस समय श्वेताम्बर सम्प्रदाय कहाँसे आया?

यदि यह कहा जाय कि इन्द्रने अपनी स्तुतिमें जिन पर आक्षेप किया है वे श्वेताम्बर नहीं थे, तो इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि वे केवली भगवानको तो मानते थे; परन्तु उन्हें भोजन करनेवाला समझते थे। अर्थात् वे अन्यमती नहीं, किन्तु एक प्रकारके जैन ही थे और जैनधर्मके सिद्धान्तोंको, केवली भगवानके घातिया कर्मोंके नाश हो जानेको, असाता वेदनीयके उदयको और मोहनीयके नष्ट हो जानेसे अनन्त सुखकी प्राप्तिको मानते थे। इन लोगोंने अवश्य ही श्रीतीर्थंकर भगवानके उपदेशसे ही उक्त कर्मसिद्धान्तों पर विश्वास किया होगा; क्योंकि उस समय चतुर्थ कालकी आदिमें इन बातोंका जाननेवाला और कोई नहीं था। तब यह कैसे सम्भव हो सकता है कि भगवानके उपस्थित होते हुए भी उन्हींके अनुयायियोंमेंसे कुछ ऐसे हों तो यह कहें कि भगवान् भोजन करते हैं और कुछ ऐसे हों जो यह कहें कि नहीं, वे कदापि भोजन नहीं करते हैं और अपने इस विवादको निबटानेके वास्ते भगवानसे पूछें ही नहीं कि आप भोजन करते हैं या नहीं। विना पूछे भी तो वे यह जान सकते थे कि ये कभी भोजन करते हैं या नहीं। इस बातका निर्णय हेतुवादसे करनेकी तो उस समय जरूरत ही नहीं थी। गरज यह कि भगवानके समक्षमें देवराजने इस प्रकारकी स्तुति की हो जिसमें कि इस प्रकारका कवलाहारसम्बन्धी विवाद हो, यह संभव नहीं। यह सब ग्रन्थकर्ताकी रचना है। उस समय दिगम्बरों और श्वेताम्बरोंके बीचमें जो विवाद चल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहा था, उसीको ग्रन्थकर्ताने इन्द्रके मुँहसे व्यक्त कराया है और जान पड़ता है कि इस प्रकारका अधिकार ग्रन्थकर्ताओंको बहुत समयसे प्राप्त है।

पण्डितवर टोडरमलजीने अपने मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थमें प्रथममानुयोगके स्वरूपका विचार करते हुए हमारे इन्हीं भावोंको इस प्रकार प्रकट किया है:-

"प्रथमानुयोग विषै जे मूलकथा हैं, ते तो जैसी हैं तैसी ही निरूपित हैं। अर तिन विषै प्रसंग पाय व्याख्यान हो है सो कोई तौ जैसाका तैसा हो है, कोई ग्रन्थकर्ताका विचार अनुसार होय, परन्तु प्रयोजन अन्यथा न हो है। ताका उदाहरण—जैसें तीर्थंकर देवनिके कल्याणनि विषै इन्द्र आया, यह कथा तो सत्य है। बहुरि इन्द्र स्तुति करी ताका व्याख्यान किया, सो इन्द्र तौ और ही प्रकार स्तुति लिखी थी, और यहाँ ग्रन्थकर्त्ता और ही प्रकार स्तुति कीनी लिखी। परन्तु स्तुतिरूप प्रयोजन अन्यथा न भया।" —पृष्ठ ३८३।

इससे अच्छी तरह सिद्ध हो गया कि इन्द्रके द्वारा भगवानकी जो स्तुति कराई गई है, उसका सारा व्याख्यान ग्रन्थकर्ताकी निजकी चीज है। आदिनाथ भगवानके समवसरणमें उसने ये ही शब्द नहीं कहे थे। उस समय श्वेताम्बर धर्मके अस्तित्वकी कल्पना निर्मूल है।

इसी तरहका एक दूसरा प्रसंग आदिपुराणके १८ वें पर्वमें भी है। आदिनाथ भगवानके दीक्षा ले लेने पर उनके साथी चार हजार राजाओंने भी दीक्षा ले ली। परन्तु वे लोग दीक्षाके अभिप्रायको कुछ नहीं समझे थे, इस लिए भगवान् तो ६ महीनेका उपवास धारण करके ध्यानस्थ हो गये, पर ये भूखके मारे दोही तीन महीनेमें व्याकुल हो गये। जब भूख प्यास नहीं सही गई, तब कन्द-मूल-फल आदि खानेके लिए वनमें जाने लगे और प्यास बुझानेके लिए तालाबोंकी ओर दौड़ने लगे; परन्तु वनदेवताने उन्हें रोका और कहा कि तुमको इस दिगम्बररूपमें ऐसा करना उचित नहीं है। यह सुनकर वे डर गये और उन लोगोंने तरह तरहके वेष धारण कर लिये। किसीने पेड़ोंकी छालें पहन लीं, किसीने लँगोटी लगा ली, किसीने भस्म रमा ली, कोई जटाधारी, दंडी त्रिदण्डी आदि बन गये। भरतमहाराजके डरके मारे वे अपने अपने घरोंको भी नहीं जा सके और वहीं झोपड़ी बनाकर रहने लगे। ये ही आगे पाखंडियोंके मुखिया बन गये। भगवान्का पोता मरीचि भी इनमें था। उसने अनेक अपसिद्धान्तोंका उपदेश देकर मिथ्यात्वकी वृद्धि की। योगशास्त्र (पतञ्जलिका दर्शन) और कापिल तंत्र (सांख्यशास्त्र) को उसीने रचा, जिनसे मोहित होकर संसार सम्यग्ज्ञानसे पराङ्मुख हुआ। यथाः—

मरीचिश्च गुरोर्नप्ता परिव्राड्भूयमास्थितः।
मिथ्यात्ववृद्धिमकरोदपसिद्धान्तभाषितैः ॥ ६१ ॥
तदुपज्ञमभूद्योगशास्त्रं तंत्रं च कापिलम्।
येनायं मोहितो लोकः सम्यग्ज्ञानपराङ्मुखः॥६२॥
—पर्व १८।

इसमें सांख्यशास्त्र और योगशास्त्रके कर्ताको भगवान् ऋषभदेवके समयमें बतलाना, जान पड़ता है, ग्रंथकर्ताकी निजकी कल्पना है। क्योंकि इन दोनोंके कर्ता अधिकसे अधिक २२००—२३०० वर्ष पहलेके हो सकते हैं, परन्तु ऋषभदेव जैन-ग्रन्थोंके अनुसार अबसे अर्बों खर्बों वर्ष पहले हुए हैं। मूल कथा इतनी है कि, भगवान् ऋषभदेवके समयमें बहुतसे राजा भ्रष्ट हो गये थे और उन्होंने तरह तरहके मिथ्यात्व फैला दिये थे। इसीको कवियोंने अपनी अपनी कल्पनाके अनुसार पल्लवित किया है और मतोंके नाम अपनी तरफसे मिला दिये हैं।

सबसे पहले 'पउमचरिय' नामक प्राकृत ग्रन्थमें हमने इस कथाको देखा। यह ग्रन्थ वीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वि० संवत् ५३० का बना हुआ है। उसमें सिर्फ इतना लिखा है कि 'वे पेड़ोंकी छाल, लँगोटी, आदि पहनवाले, फलाहारी, स्वच्छन्दमतविकल्पी, अनेक तरहके तापसी हो गये।' उसके बादका ग्रन्थ पद्मपुराण है। उसमें आदिपुराणकी ही कथाको कुछ संक्षेपमें लिखा है और अन्तमें कहा है कि 'इन सबमें महामानी मरीचि (भगवान्का पोता) था। उसने भगवे वस्त्र पहरकर परिव्राजकका मत प्रकट किया।' इसके बाद पुन्नाटसंघीय जिनसेनका हरिवंशपुराण बना है। उन्होंने इस कथाके मतसम्बन्धी अंशको सबसे अधिक पल्लवित किया है और (कलकत्तेमें प्रकाशित हुए हिन्दी अनुवादके अनुसार) नैयायिक, वैशेषिक, शब्दाद्वैतवादी, चार्वाक, सांख्य और बौद्धधर्म तकको भी उन भ्रष्ट हुए राजाओंके द्वारा चला हुआ बतलाया है। इनमेंसे कमसे कम बौद्धधर्मको तो हमारे सभी पाठक जानते हैं कि, वह महावीर भगवान्के ही समयमें स्थापित हुआ है और इससे पहले उसका अस्तित्व नहीं था। यह सर्वसम्मत बात है।

ऐसा मालूम होता है कि मूल बात केवल यह थी कि उस समय उन लोगोंने तरह तरहके तपस्वियोंके वेष धारण कर लिये। इसी बातको जुदा जुदा ग्रन्थकारोंने पल्लवित करके, इतिहासके सामञ्जस्यका ख्याल न रखकर, जुदा जुदा रूपमें वर्णन कर दिया है। मूल बात सबमें एक ढंगसे कही गई है, पर बढाई हुई बातोंमें भिन्नता आ गई है। आशा है कि पाठकगण उक्त कथनसे हमारे आशयको अच्छी तरह समझ गये होंगे।

आगामी अंकमें हम इसी विषयमें और भी कुछ लिखनेका प्रयत्न करेंगे। यदि कोई सज्जन इसके प्रतिवादमें कुछ लिखना चाहें तो सप्रमाण और संयत भाषामें लिखनेकी कृपा करें।

विविध प्रसङ्ग।

१ क्या श्वेताम्बर सांशयिक हैं?

पिछले अंकमें दर्शनसारविवेचनामें हमने लिखा था कि दर्शनसारके कर्त्ताने और गोम्मटसारके टीकाकारोंने श्वेताम्बर सम्प्रदायको सांशयिक कैसे माना है सो समझमें नहीं आता। क्योंकि विरुद्धानेककोटिस्पर्शि ज्ञानको संशय कहते हैं और श्वेताम्बर सम्प्रदायका इस प्रकारका कोई सिद्धान्त नहीं है। वे यह नहीं मानते हैं कि न मालूम स्त्रियाँ मोक्ष प्राप्त करती हैं या नहीं, केवली कवलाहार करते हैं या नहीं। ये बातें उनके यहाँ निश्चयरूपसे मानी हुई हैं। वे दिगम्बर सम्प्रदायकी दृष्टिसे विपरीतमति हो सकते हैं; न कि सांशयिक। उक्त विवेचनाके छप जाने पर हमने भट्टाकलङ्कदेवकृत राजवार्तिकको देखा तो मालूम हुआ कि हमारी शंका यथार्थ थी। उसमें श्वेताम्बर सम्प्रदायको 'विपरीत' ही माना है, सांशयिक नहीं। आठवें अध्यायके पहले सूत्रके व्याख्यानमें देखिए, इस प्रकार लिखा है:—

" अथवा पञ्चविधं मिथ्यादर्शनमवगन्तव्यं—एकान्तमिथ्यादर्शनं, विपरीतमिथ्यादर्शनं, संशयमिथ्यादर्शनं, वैनयिकमिथ्यादर्शनं, आज्ञानिकमिथ्यादर्शनं चेति। तत्रेदमेवेत्थमेवेति धर्मिधर्मयोरभिनिवेश एकान्तः। पुरुष एवेदं सर्वं इति वा, नित्य एव वा अनित्य एवेति। सग्रन्थो निर्ग्रन्थः केवली कवलाहारी स्त्री सिद्ध्यतीत्येवमादिर्विपर्ययः। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः किं स्याद्वा नवेति मतिद्वैतं संशयः। सर्वदेवतानां सर्वसमयानां च समदर्शनं वैनयिकत्वं। हिताहितपरीक्षाविरह आज्ञानिकत्वम्। "

अर्थात् एकान्त, विपरीत, संशय, वैनयिक और आज्ञानिक ये पांच मिथ्यादर्शन हैं। यही है, ऐसा ही है, इस प्रकार धर्मी और धर्ममें आग्रहबुद्धि रख-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ना 'एकान्त' है। जैसे सृष्टिकी ये सब वस्तुयें पुरुषहीके रूप हैं, ये सब नित्य ही हैं अथवा अनित्य ही हैं। वस्त्रधारी साधु निर्ग्रन्थ हैं, केवली कवलाहार करते हैं, स्त्रीको मोक्ष होता है, इत्यादि बातें मानना 'विपरीत' है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है या नहीं, इस प्रकार द्विकोटिगत बुद्धि रखना 'संशय' है। सारे देवों और सारे धर्मोंको समान देखना 'वैनायिक' है। हित और अहितकी परीक्षाका अभाव 'आज्ञानिक' है। पूज्यपाद स्वामीने सर्वार्थसिद्धिटीकामें भी बिलकुल यहीके यही वाक्य दिये हैं। इससे सिद्ध है कि, दिगम्बर-दृष्टिसे श्वेतांबर सांशयिक नहीं, किन्तु विपरीत मिथ्यादृष्टि हैं। विद्वानोंको इस विषयमें अपने विचार प्रकट करना चाहिए।

२ भट्टारकोंके साहित्यमें शिथिलाचार।

पण्डितोंके मुँहसे अकसर यह बात सुनी जाती है कि भट्टारक स्वयं भले ही शिथिल हो गये हों; परन्तु उन्होंने जितने ग्रन्थ आदि बनाये हैं, उनमें कोई बात ऐसी नहीं लिखी है, जो मूल दिगम्बर संप्रदायसे विरुद्ध हो—उन्होंने कोई उत्सूत्र कथन नहीं किया। पहले हमारा भी यही खयाल था; परन्तु अब भट्टारकोंके साहित्यका अधिकाधिक परिचय होनेसे यह निश्चय होता जाता है कि इस बातमें कोई तथ्य नहीं है। भट्टारकोंने अवश्य ही गोलमाल किया है और अपने चरित्रको किसी न किसी प्रकारसे अच्छा बतलानेका प्रयत्न किया है। और यदि उन्होंने ऐसा किया है, तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आश्चर्य तो तब होता, जब वे अपने शिथिल चरित्रको शिथिल ही बतलाते जाते। हाँ, यह अवश्य है कि उन्होंने जो शिथिलाचारका पोषण किया है, वह उतना ही किया है, जितना कि किसी तरह खींच खाँचकर सिद्ध किया जा सके। पर जितने अंशोंमें नहीं किया है, सो इस लिए नहीं कि वह उन्हें पसन्द नहीं था; किन्तु इस लिए कि दिगम्बरसम्प्रदायके परम्परागत प्रचलित भावोंमें उससे अधिक शिथिलताका प्रवेश हो नहीं सकता था—वहाँ इससे अधिक गुंजाइश नहीं थी।

भद्रबाहुसंहिताकी परीक्षाके तीसरे लेख (अंक १, पृष्ठ ६९–७०) में पाठक पढ़ चुके हैं कि संहिताके कर्ताने पंचम कालमें दिगम्बर मुनियोंका निषेध किया है। लिखा है—"इस पंचम कालमें जो कोई मुनि दिगम्बर हुआ भ्रमण करता है, वह मूढ़ है और उसे संघसे बाहर समझना चाहिये। वह यति भी अवन्दनीय है जो पांच प्रकारके वस्त्रोंसे रहित है, अर्थात् वह दिगम्बर मुनि भी अपूज्य है जो कपास, ऊन, रेशम आदिके वस्त्र नहीं पहनता है।" यह कहनकी आवश्यकता नहीं कि इस संहिताके लेखक एक वस्त्रधारी भट्टारक थे, और वे अपने वस्त्रयुक्त मार्गको श्रेष्ठ सिद्ध करना चाहते थे। आज हम अपने पाठकोंको एक और भट्टारक महाराजके वाक्य सुनाते हैं, जिनमें इस शिथिलाचारका खुले शब्दोंमें प्रतिपादन किया गया है।

तत्वार्थसूत्रकी श्रुतसागरी टीका, यशस्तिलकचम्पूटीका, सहस्रनामटीका, आदि अनेक ग्रंथोंके कर्त्ता श्रुतसागरसूरि विक्रमकी सोलहवीं शताब्दिमें हुए हैं। आप विद्यानन्द भट्टारकके शिष्य थे। आपने अपने नामके साथ उभयभाषाकविचक्रवर्ती, कलिकालसर्वज्ञ जैसे बड़े बड़े पद लगा रक्खे हैं, जिससे मालूम होता है कि आप एक प्रसिद्ध विद्वान् थे। भगवत्कुंदकुन्दाचार्यके षट्पाहुड़ ग्रंथ पर भी आपने एक संस्कृत टीका लिखी है। इस टीकाके विषयमें हम एक स्वतंत्र लेख लिखना चाहते हैं, जिससे पाठकोंको मालूम होगा कि यह कैसी टीका है। यहाँ हम उसमेंसे केवल दर्शनपाहुडकी २४ वीं गाथाकी टीकाको उद्धृत करते हैं। मूल गाथा यह है:—

सहजुप्पण्णं रूवं दिट्ठं जो मण्णए ण मच्छरिओ। सो संजमपडिवण्णो मिच्छाइट्ठी हवइ एसो॥ २४

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

इसका सीधा सादा अर्थ यह है—' जो सहजोत्पन्न रूप अर्थात् दिगम्बररूपको देखकर मत्सर भावसे नहीं मानता है—दिगम्बर मुनिकी अवहेलना करता है, वह संयमी हो, तो भी मिथ्यादृष्टि है। अब इसकी श्रुतसागरी टीकाको देखिए:—

"सहजुप्पण्णं रूवं सहजोत्पन्नं स्वभावोत्पन्नं रूपं नग्नं रूपं। दिट्ठं दृष्ट्वा विलोक्य। जो मण्णए ण मच्छरिओ, यः पुमान् न मन्यते, नग्नत्वे अरुचिं करोति, नग्नत्वे किं प्रयोजनं पशवः किं नग्ना न भवन्ति, इति ब्रूते, मत्सरतः परेषां शुभकर्माणि द्वेषी। सो संयमपडिवण्णो स पुमान् संयमप्रतिपन्नः दीक्षां प्राप्तोऽपि मिच्छाइट्ठी हवइ एसो, मिथ्यादृष्टिर्भवत्येषः। अपवादवेषं धरन्नपि मिथ्यादृष्टिः ज्ञातव्य इत्यर्थः। कोऽपवादवेषः, कलौ किल म्लेच्छादयो नग्नं दृष्ट्वा उपद्रवं यतीनां कुर्वन्ति, तेन मण्डपदुर्गे श्रीवसन्तकीर्तिना स्वामिना चर्यादिवेलायां तट्टीसादरादिकेन शरीरमाच्छाद्य चर्यादिकं कृत्वा पुनस्तन्मुंचति इत्युपदेशः कृतः संयमिनां, इत्यपवादवेषः। तथा नृपादिवर्गोत्पन्नः परमवैराग्यवान् लिङ्गशुद्धिरहितः उत्पन्नमेहनपुटदोषः लज्जावान् वा शीताद्यसहिष्णुर्वा तथा करोति सोऽप्यपवादलिङ्गः प्रोच्यते। उत्सर्गवेषस्तु नग्न एवेति ज्ञातव्यं। सामान्योक्तिविधिरुत्सर्गः विशेषोक्ति विधिरपवाद इति परभाषणात्।"

अर्थात् स्वभावोत्पन्न नग्न रूपको देखकर जो पुरुष उसे मत्सरभावसे नहीं मानता है, नग्नपनामें अरुचि करता है, कहता है—नग्नपनेमें क्या रक्खा है, पशु क्या नग्न नहीं रहते, (दूसरोंके शुभकर्मसे द्वेष करनेको मत्सर कहते हैं।) वह संयमप्रतिपन्न या दीक्षित होने पर भी मिथ्यादृष्टि है, अर्थात् वह अपवादवेष धारण करता हुआ भी मिथ्यादृष्टि है। अपवाद किसे कहते हैं ? कलिकालमें म्लेच्छ (मुसलमान) आदि यतियोंको नग्न देखकर उपद्रव करते हैं, इस कारण मण्डपदुर्ग (माण्डलगढ़—मेवाड़) में श्रीवसन्तकीर्तिस्वामी (भट्टारक) ने ऐसा उपदेश दिया कि चर्या आदिके समय (आहारको जाते समय) मुनिको चटाई, टाट आदिसे शरीर ढक लेना चाहिए, और फिर चटाई आदि छोड़ देना चाहिए। संयमी या मुनियोंका यह अपवाद वेष है। इसी प्रकार यदि कोई राजवंशादिमें उत्पन्न हुआ पुरुष बहुत वैराग्यवान् होकर मुनि होना चाहे, परन्तु वह लिङ्गशुद्धिरहित हो; अर्थात् उसके लिङ्गके अग्रभागमें कोई दोष हो, अथवा वह लज्जावान् हो, या शीत आदि सहन नहीं कर सकता हो, और इस कारण चटाई वगैरहसे शरीर ढँक लिया करे, तो उसे अपवादलिङ्गधारी कहते हैं। उत्सर्गवेष तो नग्न ही है। सामान्योक्ति विधिको उत्सर्ग और विशेष विधिको अपवाद कहते हैं।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि मूल गाथासे इस अर्थका कोई सम्बन्ध नहीं है; यह अभिप्राय बहुत ही बड़ी धृष्टतासे खींच खाँचकर निकाला गया है। उत्सर्ग और अपवादका यह मतलब ही नहीं है। यदि इसीको अपवाद कहने लगें तो फिर भ्रष्टता कुछ रहेगी ही नहीं। श्रुतसागर महाराजका सबसे बड़ा अन्याय तो यह है कि उन्होंने अपने समयके शिथिलाचारको पोषण करनेके लिए भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यके उस ग्रन्थको अपना हथियार बनाया है जो तिलतुष मात्र परिग्रहका भी विरोधी है और जगह जगह शिथिलताका प्रतिवाद करता है। सूत्रपाहुड़की ये गाथायें देखिए:—

णिच्चेल पाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं। एक्को वि मोक्खमग्गो सेसाय अमग्गया सव्वे॥ १०॥

अर्थात् वस्त्ररहितता और पाणिपात्रताका भगवानने उपदेश दिया है। यही एक मोक्षमार्ग है, शेष सब अमार्ग हैं।

बालग्गकोडिमत्तं परिगहगहणो ण होइ साहूणं। भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णंण्णं एक्कठाणंमि॥ १७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् बालके आगेकी नोकके भी बराबर परिग्रह साधु ग्रहण नहीं करता। वह अपने हाथरूपी पात्रमें अन्यका दिया हुआ भोजन एक स्थानमें खड़े होकर करता है। अब मिलान कीजिए कि, कहाँ तो यह कठिन आज्ञा और कहाँ वह शिथिलता कि यदि शीत आदि सहन नहीं किया जाय, लज्जा नहीं जीती जा सके तो कपड़े पहनकर अपवाद-लिङ्गधारण कर लो। मूल ग्रंथकर्ता जिसे अमार्ग या धर्मसे बाहर बतलाते हैं उसे आप अपवाद लिङ्ग कहनेकी धृष्टता कर रहे हैं। अपनी कायरता और कमजोरीको मुनियोंकी सिंहवृत्तिकी चादरके नीचे छुपाना चाहते हैं।

इस टीकासे एक बात यह भी मालूम हुई कि, कोई वसन्तकीर्ति स्वामीने इस मार्गको चलाया था। चित्तौरकी गद्दीके भट्टारकोंकी नामावलीमें वसन्तकीर्तिका नाम आता है, और उनका समय १२६४ बतलाया जाता है। मालूम नहीं, यह समय कहाँ तक ठीक है और ये श्रुतसागर सूरिके उल्लेख किये हुए ही वसन्तकीति हैं या और कोई। यदि ये ही हों, तो इस मार्गका पता १३ वीं शताब्दितक तो लगता है, यद्यपि हमारा विश्वास है कि यह शिथिलाचार और भी कई शताब्दियोंसे चला आ रहा था।

आशा है, इससे हमारे पाठक समझ जावेंगे कि भट्टारकोंने अपनी रचनाओंमें अपनी शिथिलताका भी पोषण किया है और खूब किया है। अवकाशके अनुसार हम इस प्रकारके और भी प्रमाण उपस्थित करेंगे।

३ माणिकचन्द ग्रन्थमाला।

स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्दजीकी इस यादगारीका काम धीरे धीरे पर सुव्यवस्थित रूपसे चल रहा है। धीरे धीरे चलनेका कारण यह है कि अभी तक इसकी ओर समाजका चित्त जितना आकर्षित होना चाहिए, उतना नहीं हुआ है और ग्रन्थमालाके फण्डमें इतनी थोड़ी रकम है कि उसके भरोसे जल्दी जल्दी और बड़े बड़े ग्रन्थोंके छपानेका प्रबन्ध नहीं किया जा सकता है। संस्कृत ग्रन्थोंकी खप भी बहुत थोड़ी होती है। जबतक धनियों और धर्मात्माओंका इसे सहारा न हो, तबतक इस कार्यमें उन्नति नहीं हो सकती। इस समय प्रत्येक ग्रन्थकी केवल ५०० प्रतियाँ छपाई जाती हैं। यदि प्रत्येक ग्रन्थकी दशदश प्रतियाँ खरीदनेवाले २० और पाँच पाँच प्रतियाँ खरीदनेवाले ४० स्थायी ग्राहक ही हमें मिल जायँ, जो यह कार्य बड़ी अच्छी तरह चलता रहे—और इसके द्वारा सैकड़ों ग्रन्थोंका उद्धार हो जाय। इसके लिए हमने कई बार प्रार्थनायें की; परन्तु अभी तक बहुत ही थोड़े सज्जनोंने इस ओर ध्यान दिया है। आशा है कि दशलक्षण पर्वके दिनोंमें हमारे पाठक इस विषयमें अवश्य ही कुछ न कुछ प्रयत्न करेंगे। यह करनेकी तो आवश्यकता ही नहीं है कि इस मालाके तमाम ग्रंथ केवल लागतके मूल्य पर बेचे जाते हैं।

लघीयस्त्रयादिसंग्रह, सागरधर्मामृत सटीक, विक्रान्तकौरवनाटक, पार्श्वनाथचरितकाव्य, मैथिलीकल्याण नाटक, आराधनासार सटीक और जिनदत्तचरित्र ये सात ग्रन्थ तो पहले छप चुके थे। नीचे लिखे चार ग्रंथ अभी हाल ही छपकर तैयार हुए हैं।

८ प्रद्युम्नचरित। यह बिलकुल अप्रसिद्ध ग्रन्थ है। सुप्रसिद्ध राजा भोजके पिता सिन्धुराजके दरबारके सभ्य और महामहत्तम 'पप्पट' नामके कोई धनिक थे। उनके गुरु श्रीमहासेन नामक कवि इसके रचयिता हैं। उपलब्ध प्रद्युम्नचरितोंमेंसे यह सबसे प्रौढ और सुन्दर है। यह केवल चरित ही नहीं उच्चश्रेणीका एक काव्य है। इसमें चौदहसर्ग है। २३० पृष्ठोंमें यह समाप्त हुआ है। मूल्य इसका केवल आठ आने है।

९ चारित्रसार। गंगवंशीय राजा राचमल्लके सुप्रसिद्ध मंत्री और सेनापति चामुण्डरायने इस ग्रन्थकी रचना की है। ये वही चामुण्डराय हैं जिन्होंने बाहुबलि स्वामीकी सुप्रसिद्ध मूर्तिकी प्रतिष्ठा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कराई थी और गोम्मटसारके कर्ताने जिनकी जगह जगह प्रशंसा की है। इस ग्रन्थमें श्रावकोंके और मुनियोंके दोनोंके आचारका वर्णन है। ग्रन्थ गद्यमें है। पृष्ठसंख्या १०० । मूल्य छह आने।

१० प्रमाणनिर्णय । एकीभावस्तोत्रके कर्ता प्रसिद्ध नैयायिक वादिराजसूरि इस ग्रन्थके कर्ता हैं। यह ग्रन्थ अभीतक दुर्लभ और अप्रसिद्ध था। न्यायशास्त्रका प्रारंभिक ग्रन्थ है। पाठ्यग्रन्थ होनेके योग्य है। पृष्ठ संख्या ७० । मूल्य पाँच आने।

११ त्रैलोक्यसार सटीक । आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीका यह ग्रन्थ मूल, संस्कृतछाया और आचार्य माधवचन्द्रकी संस्कृत-टीकासहित छप रहा है। इस ग्रन्थका अधिक परिचय देना व्यर्थ है। करणानुयोगका यह बहुत ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है। पृष्ठसंख्या लगभग ४०० होगी और मूल्य लगभग सवा रुपया।

नीचे लिखे ग्रन्थोंके छपानेका प्रबन्ध हो रहा है:-

१२ आचारसार । यह यत्याचारका ग्रन्थ है। इसके कर्ता वीरनन्दि नामके आचार्य हैं, जो १२वीं शताब्दिके लगभग हुए हैं। चन्द्रप्रभचरित्रके कर्तासे ये पृथक् हैं। यह ग्रन्थ अतिशय दुर्लभ और अप्रसिद्ध है। चरित्रसारके ही बराबर होगा।

१३ नयचक्र । यह देवसेन नामक आचार्यका बनाया हुआ प्राकृत ग्रन्थ है, संस्कृत छाया और उत्थानिकाके सहित छपेगा। यह बहुत प्राचीन ग्रन्थ है। विद्यानन्दिस्वामीने अपने श्लोकवार्तिकालंकारमें इसकी गाथायें उद्धृत की हैं और इनका उल्लेख किया है। नयोंका स्वरूप समझनेके लिए यह बहुत ही महत्त्वकी चीज है।

१४ तत्त्वानुशासनादिसंग्रह । इसमें नीचे लिखे कई छोटे छोटे ग्रन्थोंका संग्रह रहेगा। प्रायः सभी ग्रन्थ अपूर्व और दुर्लभ रहेंगे। पहले ४ ग्रन्थ संस्कृत और शेष सब प्राकृत हैं।

१ तत्वानुशासन—आचार्य नागसेनकृत। बहुत ही महत्त्वका ग्रन्थ है।

२ इष्टोपदेश—आचार्य पूज्यपादस्वामीकृत। मूल और पण्डितप्रवर आशाधरकृत संस्कृत टीका।

३ पात्रकेसरीस्तोत्र—आचार्य विद्यानन्दिकृत।

४ नीतिसार (समयभूषण)—आचार्य इन्द्रनन्दिकृत।

५ योगसार—योगचन्द्राचार्यकृत।

६ तत्त्वसार—आचार्य देवसेनकृत।

७ ज्ञानसार— " "

८ नवति प्रायश्चित्त—अज्ञातनामाकृत।

९ मोक्षपञ्चाशिका— " "

जो ग्रन्थ छप रहे हैं, उनमें सहायताकी आवश्यकता है। जो महाशय सहायता देंगे उनका नाम ग्रन्थोंके ऊपर छपाया जायगा। प्रत्येक ग्रन्थकी कमसे कम १२५ प्रति धर्मार्थ दान करनेके लिए जो महाशय लेंगे उनका चित्र पुस्तकके साथमें लगवा दिया जायगा। पर्वके दिनोंमें पुस्तकदान करनेके समान कोई दान नहीं है।

४ महात्मा गाँधीकी पोशाक।

इस समय देशभक्त महात्मा मोहनदास करमचन्द गाँधीका नाम देशव्यापी हो रहा है, अतएव हमारे पाठक भी उन्हें अवश्य जानते होंगे। जबसे चम्पारनकी प्रजाके कष्टोंको—जो उसे वहाँके नीलव्यवसायी गोरोंके द्वारा सहने पड़ते हैं—दूर करनेके लिए वे कार्यक्षेत्रमें उपस्थित हुए हैं तबसे गोरोंकी ओरसे उनपर तरह तरहके आक्षेप किये जा रहे हैं। अभी थोड़े दिन पहले मि० अरविनने पायनियरमें एक लेख प्रकाशित कराया था और उसमें गाँधीजीकी बहुतही सादी, कम कीमती, और उनके प्रान्तकी परंपरागत पोशाककी—जिसे देखकर कोई यह अनुमान नहीं कर सकता कि वे देशके एक बड़े भारी नेता हैं—दिल्लगी उड़ाई थी। महात्मा गाँधीने उक्त लेखका जो उत्तर दिया है, उसके कुछ अंशोंको हम यहाँ इस लिए उद्धृत करते हैं कि उनसे हमारे समाजके विदेशी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेषभूषाभक्त भाई कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे । "पश्चिमीय सभ्यताके सब प्रकारके सौन्दर्य पर अच्छी तरह विचार करनेके बाद मैं अपने जातीय लिबासका और पोशाकका पक्षपाती बना हूँ। मैं इस समय चम्पारनमें जिस पोशाकको पहन रहा हूँ, भारतमें रहते समय मैं सदा यही पोशाक पहनता रहा हूं । काठियावाड़के बाहरकी अदालतोंमें तथा अन्यत्र जानेके समय अवश्य ही मैंने दो चार बार (सो भी बहुत समय पहले) मैंने सर्वसाधारणकी भाँति अधसाहवी पोशाक पहनी थी । आजसे २१ वर्ष पहले ठीक इसी पोशाकमें मैं काठियावाडकी अदालतोंमें हाजिर होता था । अब तक मैंने केवल एक परिवर्तन किया है। वह यह कि अब मैं स्वयं कपड़े बुनता और खेती करता हूँ । मैंने स्वदेशीका व्रत ग्रहण किया है। अपने कपड़ोंको मैं स्वयं सीं लेता हूँ या मेरे साथी सीं देते हैं। मि० अरविन कहते हैं कि मैं केवल एक विलक्षणता दिखलानेके लिए चम्पारन प्रजाके सामने समयोपयोगी सादी पोशाकमें निकलता हूँ परन्तु यह ठीक नहीं है। असल बात यह है कि मैं भारतवासियोंकी प्रकृतिके अनुसार जातीय पोशाक पहनता हूँ । मेरी रायमें **विलायती पोशाककी नकल करना हमारी अवनतिका, हीनताका और दुर्बलताका परिचायक है**। हमारे समान सीधी सादी, कौशलसम्पन्न और सस्ती पोशाक पृथिवीकी और किसी भी जातिकी नहीं । इससे स्वास्थ्यविज्ञानका उद्देश्य सिद्ध होता है। अँगरेज लोग यदि व्यर्थके अहंकार और अमूलक 'प्रेष्टिज' की माया परित्याग कर सकते, तो उन्होंने बहुत दिन पहले ही भारतीय पहनाव ओढ़ावका व्यवहार करना शुरू कर दिया होता । इस विषयमें मैं इतना और कहना चाहता हूँ कि मैं चम्पारनमें सब जगह नंगे पैर नहीं घूमता । मैंने पवित्रताके खयालसे जूता पहनना छोड़ दिया है तथा उससे अनुभव किया है कि यदि हो सके तो जूता न पहनना ही उचित है। क्योंकि यही मनुष्यप्रकृतिके लिए सहज और स्वास्थ्यप्रद है । " जिस समय सारा देश विलायती चालढाल, वेश-भूषाके आदिकी प्रबल बहियामें बहा जा रहा है, उस समय क्या महात्मा गाँधीके उक्त विचार कुछ प्रभाव डालनेमें समर्थ होंगे ?

५ दिगम्बरोंके मन्दिरमें श्वेताम्बर और श्वेताम्बरोंके मन्दिरमें दिगम्बर प्रतिमायें ।

गवालियर राज्यके शिवपुरकलाँ नामक स्थानसे हमारे पास श्रीयुत गंभीरमलजी अजमेराने एक पत्र भेजा है जिसका सारांश यह है—" यहाँ दिगम्बर सम्प्रदायके दो मन्दिर है—एक तेरापंथी और दूसरा बीसपंथी । श्वेतांबर सम्प्रदायके भी दो मन्दिर हैं जिनमेंसे एक किलेमें है । इस किलेके श्वेताम्बरी मन्दिरमें दिगम्बरियोंकी भी ७-८ प्रतिमायें है जिनके पूजन प्रक्षाल आदिका प्रबन्ध श्वेताम्बरोंके अधिकारमें है । दिगम्बरी भाई वहाँ दर्शन पूजन आदिके लिए नहीं जाते । इसी प्रकार दिगम्बरी बीसपंथी मन्दिरमें श्वेताम्बरोंकी भी ७-८ प्रतिमायें है और उनके पूजन प्रक्षालको श्वेताम्बरी भी नहीं आते । हाँ, श्वेताम्बरी भाई भादों सुदी १० को तेरापंथी और बीसपंथी दोनों मंदिरोंमें धूप खेनेके लिए आया करते हैं । ये प्रतिमायें दोनोंके मंदिरोंमें कोई सौ डेड़ सौ वर्षसे इसी तरह चली आई हैं। इन प्रतिमाओंको बदल लेनेके विषयमें एकबार भट्टारकजी और जतीजीके बीचमें चर्चा हुई थी । उस समय यह तय हुआ था कि तुम्हारी तुम ले लो और हमारी हमको दे दो। परन्तु एक पक्ष कहने लगा कि पहले तुम हमारी प्रतिमा हमारे मन्दिरमें रख जाओ और फिर अपनी ले जाओ । दूसरा पक्ष भी इसीका अनुवाद करने लगा। इस तरह मैं पहले और मैं पहलेमें ही यह बात रह गई । इसके बाद यह तय हुआ कि तुम यहाँसे उठाओ और हम वहाँसे उठावें; परन्तु फिर भी इसी बात पर झगड़ा हुआ कि पहले तुम रख जाओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पीछे हम रक्खेंगे। इस पिछली बातको हुए भी १५–२० वर्ष हो गये। अभी तक प्रतिमायें जहाँकी तहाँ हैं। पहले दिगम्बरी प्रतिवर्ष कुँआरके महीनेमें गाजेबाजेके साथ सरे बाजार होते हुए किलेके मन्दिरमें पूजन करनेको जाते थे; परन्तु अब दो वर्षसे उनका यह पूजनको जाना बन्द हो गया है। क्यों कि श्वेताम्बरी भाईयोंने कहा कि जिस तरह तुम हमारे यहाँके मन्दिरमें प्रति वर्ष पूजन करने आते हो उसी तरह हमको भी एक दिन आने दिया करो। यदि हमको न आने दोगे तो हम भी न मन्दिरकी चावी देंगे ओर न पूजन करने देंगे। यह बात दिगम्बरियोंको पसन्द नहीं आई। अब वे न पूजन करने जाते हैं और न उन्हें आने देते हैं। हमारी समझमें दोनों तरफवालोंको मिलकर यह झगड़ा तय कर डालना चाहिए और अपनी अपनी प्रतिमायें अपने अपने मन्दिरोंमें रख लेना चाहिए। यदि ऐसा न किया जायगा तो आगे मन्दिरोंकी आमदनी और सम्पत्ति आदिके सम्बन्धमें झगड़ा हो सकता है।" उक्त भाई साहब एक बातकी ओर और भी ध्यान दिलाते हैं। शिवपुरसे १४ मीलपर दातारदा नामका गाँव है। वहाँ एक मन्दिर है जिसकी देखरेख करनेवाला या पूजन प्रक्षाल करनेवाला कोई नहीं है। वहाँके जमींदार कहते हैं कि इस मन्दिरकी प्रतिमायें सरकारमें सूचना करके ले जाओ। परन्तु यहाँके (शिवपुरके) भाई इस बात पर ध्यान नहीं देते।"

शिवपुरके समान और भी कई स्थानोंमें यह बात देखी गई है कि दिगम्बरी मन्दिरोंमें श्वेताम्बरी प्रतिमायें और श्वेताम्बरी मन्दिरोंमें दिगम्बरी प्रतिमायें रहती थीं। कई स्थानोंमें तो अब भी हैं। इससे यह अनुमान होता है कि दिगम्बरी और श्वेताम्बरी भाइयोंमें इस समय–इस शिक्षा और सभ्यताके दिनोंमें–जितना वैर विरोध बढ़ गया है, उतना सौ डेढ़ सौ वर्ष पहले नहीं था। उस समय दोनों हिल मिलकर रहते थे और धार्मिक बातोंमें भी एक दूसरेके बाधक नहीं होते थे।

६ भट्टारकोंकी लीला।

तेरहपन्थके साहित्यने भट्टारकोंके शासनकी जड़को हिला दिया है। पढ़े लिखे लोगोंमें और जैनधर्मका थोड़ासा भी स्वरूप समझनेवालोंमें अब उनकी कोई 'पूछ' नहीं है; फिर भी जिन प्रान्तोंमें धार्मिक ज्ञानकी कमी है और भाषाकी भिन्नताके कारण तेरहपंथी भाषासहित्यका प्रचार नहीं हुआ है, ये लोग खूब पुजते हैं और लोगोंके भोलेपनका लाभ उठाकर मनमाना अत्याचार करते हैं। गुजरात, बरार, महाराष्ट्र और कर्नाटक प्रान्त इनके अड्डे हैं। इन लोगोंके पास लाखों रुपयोंकी सम्पत्ति है, घोड़ा–गाड़ी, रथ–पालकी, नौकर चाकर, चोपदार छड़ीदार, आदि सारे सजधजके सामान हैं। रेशम और जरीके वस्त्र, सोने चाँदीके पात्र, इत्र, फुलेल, आदि सभी भोगोपभोगके पदार्थ इनके सामने उपस्थित रहते हैं। दश पन्द्रह रुपया रोजसे कमका खर्च शायद ही किसी भट्टारकका होगा। ये एक तरहके राजा हैं। अपनी रियासतके प्रत्येक श्रावकसे ये वार्षिक कर लेते हैं और भोजनके समय 'गहरी' दक्षिणा लेते हैं। जो नहीं देता है उसके सिर हो जाते हैं, भोजन नहीं करते हैं, और स्थानादिकी अनुकूलता हुई तो उससे डंडे मारकर भी वसूल कर लेते हैं! इनके नौकर चाकर और छड़ीदार पुलिसके सिपाहियोंसे किसी बातमें कम नहीं। इनके कर भी कई तरहके हैं। दक्षिणके कई भट्टारक श्रावकोंको विधवाओंके साथ ब्याह करनेकी और विवाहसम्बन्ध रद्द करनेकी (तलाक की) आज्ञा दिया करते हैं और इस कार्यके लिए जो टैक्स मुकर्रर है उससे हजारों रुपयोंकी प्राप्ति करते हैं। पंचायती कामकाजोंमें भी इनका दखल रहता है। उनके बड़े बड़े फरमान निकला करते है और उनके मारे श्रावकगण थर थर काँपते हैं। ये प्रतिवर्ष किसी चुने हुए स्थानमें चातुर्मास किया करते हैं और इस समय इनके खूब गहरे हो जाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ये अपनेको परम निर्ग्रन्थगुरुओंके उत्तराधिकारी समझते हैं और अपनी पूजा राजाओं और ऋषियोंके तुल्य कराते हैं। जब ये भोजन करनेके लिए पूरे साज-सरंजामके साथ श्रावकके घर जाते हैं तब आगे आगे बारोठ दुहाई देता चलता है—'दिल्ली-गादी, जैनके राजा श्री १००८ भट्टारक विजयकीर्तिजी महाराज' आदि। भोजनशालाके द्वारपर पहुँचकर दूध, दही, इत्रमिश्रित जल आदिसे ये अपने चरण धुलवाते हैं, और फिर भीतर जाकर कुर्सी पर विराजमान हो जाते हैं। इसी समय इनके शिष्योंमेंसे कोई पण्डित—'ओंह्रीं श्रीभट्टारक विजयकीर्तिदेवाय जलं निर्विपामीति स्वाहा' आदि पाठ बोलकर श्राविकाओंसे अष्ट द्रव्योंद्वारा पूजा करवाता है।

भट्टारकोंकी ये और इस तरहकी और भी अगणित लीलायें हैं, जिन्हें सुनकर और देखकर बड़ा ही दुःख होता है। जिस सम्प्रदायमें तिल-तुष मात्र परिग्रह रखनेको भी अक्षम्य अपराध बतलाया था, उसीके गुरु आज इस अवस्थाको पहुँच गये हैं और फिर भी पूजे जाते हैं, जैनधर्मकी इससे अधिक दुर्दशा और क्या हो सकती है? हम देखते हैं कि जैनसमाजके विद्वानोंका, धनियोंका और धर्म धर्मकी पुकार मचानेवालोंका इस ओर जरा भी ध्यान नहीं है। उन्हें अपने इन गुजरात, बिहार आदि प्रान्तोंके भोले भाइयोंकी अन्धश्रद्धा और मूर्खता पर जरा भी तरस नहीं आता है। उन्होंने तेरहपन्थके उस 'मिशन' के कार्यको स्थगित कर दिया है जिसने सारे हिन्दी-भाषाभाषी प्रान्तोंको भट्टारकोंकी चुंगलमेंसे सदाके लिए मुक्त कर दिया है। उस 'मिशन'को अब फिरसे सचेत करना चाहिए और इन प्रान्तोंमें शिक्षाप्रचारके द्वारा, उपदेशोंके द्वारा, धर्मके सच्चे स्वरूपको प्रतिपादन करनेवाले ग्रन्थोंके द्वारा, तथा और भी जो जो उपाय योग्य हों उनके द्वारा लोगोंकी अन्धश्रद्धाको दूर करना चाहिए। हमारी समझमें दूसरे धर्मवालोंको शास्त्रार्थ आदिके द्वारा जैन बनानेका यत्न करना उतना लाभकारी नहीं जितना अपने इन भाइयोंको सच्चे देवगुरुका श्रद्धानी बनाना लाभकारी है। ये बेचारे नाम मात्रके 'जैन' हैं; ये नहीं जानते कि जैनधर्ममें देव और गुरुका स्वरूप कैसा माना है। इसी कारण ये भट्टारकोंकी शिकार बन रहे हैं। भट्टारकोंकी वर्तमान अवस्था भी दिगम्बर जैनधर्मके लिए बड़े भारी कलंककी बात है। परन्तु जब तक श्रावकोंकी अवस्था नहीं सुधरी है, तब तक इनके सुधरनेकी आशा करना व्यर्थ है।

७ जैन भ्रातृसमाज।

इटावेके बाबू चन्द्रसेनजी वैद्य और उनके कुछ मित्रोंने 'जैनभ्रातृसमाज' नामकी एक एक नूतन संस्था स्थापित की है। जैनधर्मको पालनेवाली तमाम जातियोंमें परस्पर रोटी-बेटीव्यवहार होना उचित है, इस विषयका आन्दोलन करनेके लिए उक्त संस्थाने जन्म लिया है। जहाँ तक हम जानते हैं, इस विषयमें जैनसमाजके प्रायः सभी विद्वान्—पुराने और नये दोनों दलके—सहमत हैं। आदिपुराण आदि पुराण-ग्रंथोंका मत भी—जो इस विषयके प्रधान प्रतिपादक हैं—इसके प्रतिकूल नहीं हैं। इस समय जैनोंकी जितनी जातियाँ है, वे सब प्रायः वैश्यवर्णकी हैं। एक दो जातियाँ ऐसी हैं, जिनके विषयमें अनुमान होता है कि वे जैनधर्म धारण करनेके पहले शूद्र रही होंगी, परन्तु इस समय उनके आचरण और व्यापार आदि वैश्योंके ही समान हैं, अतएव उन्हें वैश्य ही गिनना चाहिए। ऐसी दशामें आदिपुराण इन सबके पारस्परिक विवाहादि-व्यवहारका कभी विरोधी नहीं हो सकता। क्योंकि वह तो आज्ञा देता है कि ब्राह्मण चारों वर्णकी कन्याओंके साथ, क्षत्रिय क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र कन्याओंके साथ, और वैश्य वैश्य-शूद्रकन्याओंके साथ विवाह कर सकता है। कमसे कम इस बातका विरोधी तो कोई भी पुराना नया जैन शास्त्र नहीं है कि खण्डेलवाल अग्रवालके साथ या परवार पद्मावती पुरवारके साथ विवाहसम्बन्ध न करे। गरज यह कि हमारी धार्मिक आज्ञायें तो इस प्रथाके अनुकूल हैं; यदि कोई प्रतिकूलता है तो गतानुगतिकताकी है। संस्थाको इसीके ऊपर विजय प्राप्त करनी होगी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और इसका सबसे अच्छा उपाय आन्दोलन है। इस विषयके लेख लिखवाना, उन्हें समाचारपत्रोंमें प्रकाशित कराना, छोटे छोटे ट्रेक्टोंके रूपमें बहुलताके साथ बाँटना, जगह जगह सभा सुसाइटियोंमें व्याख्यान दिलवाना, पंचायतियोंको और उनके मुखियोंको समझाकर अपनी ओर करना, सम्मतियोंका संग्रह करना, और कमसे कम पाँच हजार सम्मतियोंके एकत्रित हो जाने पर इस तरहके दश बीस विवाहोंको उदाहरणके लिए करा देना, यही अथवा इसीसे मिलती जुलती पद्धति आन्दोलनकी होनी चाहिए। बाबू चन्दसेनजी बड़े उद्योगी और परिश्रमी पुरुष हैं। हमें आशा है कि वे अपनी इस नूतन संस्थाको एक काम करनेवाली संस्थाके रूपमें चलावेंगे, नाम करनेवाली अन्यसंस्थाओंके रूपमें नहीं। जैनसमाजके नवयुवकोंको—जिनके रक्तमें काम करनेका उत्साह है—पस कार्यमें योग देना चाहिए और इसके उद्देश्योंका घर घर प्रचार घरना चाहिए।

८ पं० अर्जुमलालजी सेठीका कष्ट।

अपना सर्वस्व लगाकर जैनसमाजकी सेवा करनेवाले पं० अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. के दुःखोंका अन्त अब तक नहीं आया। तीन वर्ष होनेको आये वे अभीतक बिना किसी अपराधके जयपुरकी जेलमें पड़े हुए अपने बहुमूल्य जीवनको व्यर्थ व्यतीत कर रहे हैं। सुना है, कुछ समयसे उनके कष्ट और भी अधिक बढ़ गये हैं। राजकर्मचारियोंकी वक्रदृष्टिके कारण उन्हें जो थोड़े बहुत सुभीते मिले थे, वे भी अब नहीं रहे हैं। उनका स्वाथ्य बिगड़ गया है और यदि वे शीघ्र न छोड़े जायँगे तो डर है कि उनका मस्तक भी न बिगड़ जाय! उनकी मानसिक अवस्था पहलेकी अपेक्षा बहुत ही खराब है। मालूम नहीं सरकारको इन बातोंकी कुछ खबर है या नहीं।

हमें यह कहनेमें कुछ भी संकोच नहीं है कि श्रीयुत सेठीजीके मामलेका उत्तरदायित्व यद्यपि जयपुर राज्यपर है, परन्तु यह कह देनेसे भारत गवर्नमेंट निर्दोष नहीं ठहर सकती। यद्यपि इसमें उसका कोई प्रत्यक्ष हाथ नहीं है; परन्तु वास्तवमें परोक्ष रूपसे वही इसकी विधाता है। यह कितना बड़ा अन्याय है कि एक व्यक्तिकी स्वाधीनता हरण कर ली जाती है, वह वर्षोंतक जेलमें सड़ाया जाता है, परन्तु उसे यह नहीं बतलाया जाता कि उसका अपराध क्या है। यदि सेठीजी दोषी हैं, उन्होंने कोई अपराध किया है, तो क्यों नहीं उन पर मुकद्दमा चलाया जाता और क्यों वे दोषी सिद्ध नहीं किये जाते। क्या इन तीन वर्षोंमें भी सरकार उनके विरुद्ध प्रमाणोंको संग्रह न कर सकी? हमारा विश्वास है कि सेठीजी निर्दोष हैं, उन्होंने कोई अपराध नहीं किया, वे राजकर्मचारियोंके किसी बहुत बड़े भ्रमके कारण ही संकट भोग रहे हैं।

जैनसमाजको चाहिए कि वह अपने इस निःस्वार्थ सेवकको भूल न जाय। भारतमंत्री लार्ड मांटेगू भारतमें आ रहे हैं। श्रीमती एनी बीसेण्ट, उनके साथी और मि० शौकत अली आदि राजनीतिक नजरबन्द लोग छोड़े जा रहे हैं, और भी बहुतसे राजनीतिक कैदी छोड़े जायँगे, ऐसी खबरें सुन पड़ रही हैं। ऐसे समयमें जैनसमाजको सेठीजीके विषयमें फिर आन्दोलन करना चाहिए और एक डेप्यूटेशन लेकर लार्ड मांटेगूसे मिलना चाहिए। वे उदार राजनीतिज्ञ सुने जाते हैं। कोई कारण नहीं कि वे हमारी उचित प्रार्थना पर ध्यान न दें, और सेठीजीको इस अन्यायसे मुक्त करनेके लिए भारत सरकारसे सिफारिश न करें।

हम अपने समस्त देशभक्त नेताओंका ध्यान भी इस ओर आकर्षित करते हैं। उन्हें श्रीमती बीसेण्ट और उनके साथियोंको ही बन्धमुक्त कराके निश्चिन्त न हो जाना चाहिए। क्या सेठीजी और उन्हींके समान और भी जो सैकड़ों देशसेवक विना किसी अपराधके कैद हैं उनकी स्वाधीनताका कुछ मूल्य ही नहीं है? क्या हमारे आन्दोलनोंमें भी गोरे रंगको ही अधिक प्रतिष्ठा दी जायगी? देशके प्रत्येक व्यक्तिकी—छोटे बड़ेकी स्वाधीनताकी रक्षा करना हमारा धर्म होना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर्वार्थसिद्धि अर्थात् तत्वार्थसूत्रकी आचार्य पूज्यपाद कृत संस्कृत टीका बहुत दिनोंसे मिलती नहीं थी। अब यह फिरसे छपाई गई है। अबकी बार कपड़ेकी जिल्द बँधाई गई है। मूल्य दो रुपया। **आत्मप्रबोध**—श्रीकुमारनामक कविका बनाया हुआ एक अप्रसिद्ध ग्रन्थ भाषाटीका सहित छपाया गया है। आध्यात्मिक ग्रन्थ है। मूल्य बारह आने।

मैनेजर, **जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय**, हीराबाग, **बम्बई**।

साहित्य पत्रिका

प्रतिभा।

(संपादक, श्रीयुत पं० ज्वालादत्त शर्मा)

प्रतिभाका छट्ठा अङ्क शीघ्र प्रकाशित होनेवाला है। यह प्रति अँगरेजी मासके पहले सप्ताहमें प्रकाशित होती है। यदि आप साहित्यसंबन्धी लेख पढ़ना चाहते हैं, तो प्रतिभाके ग्राहक बनिये। प्रतिभामें रसमयी कवितायें और शिक्षाप्रद पर चुभती हुई गल्पें भी प्रकाशित होती हैं। वार्षिक मूल्य २) है। हम इसके विषयमें अधिक न कहकर हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ पत्रिका सरस्वती-की सम्मति नीचे उद्धृत किये देते हैं:—

“प्रतिभा—यह एक नई मासिक पत्रिका है। मुरादाबादके लक्ष्मी-नारायण प्रेससे निकली है। हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक पं० ज्वालादत्तजी शर्मा इसके संपादक हैं। सरस्वतीके पाठक आपसे खूब परिचित हैं। वे जानते होंगे कि शर्माजी सरस, बामुहाविरा और साथ ही प्रौढ भाषा लिखनेमें कितने पटु हैं। ऐसे सुयोग्य संपादकके तत्वावधानमें आशा है प्रतिभाका उत्तरोत्तर विकास होगा।

इसका पहला अङ्क अप्रैल १९१० में प्रकाशित हुआ है। उसमें छोटे बड़े १० लेख और ६ कवितायें हैं। साहित्य, शिक्षा, उद्योग धन्धा, विज्ञान, जीवनचरित और आख्यायिका इतने विषयों पर इसमें लेख प्रकाशित हुए हैं। लेखोंके संबन्धमें सामयिकता और रोचकताका बहुत ध्यान रक्खा गया है।”

पत्रव्यवहार करनेका पता—

मैनेजर ‘प्रतिभा’ लक्ष्मीनारायण प्रेस,

मुरादाबाद।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देशी, पवित्र, स्वादिष्ट, पाचक दवाइयोंका अपूर्व संग्रह

दिलबहार चूरन

(खाना शीघ्र हजम करने व भूख बढ़ाने वाला)

किसी भी उत्तम चूर्णमें तीन गुण होना आवश्यक है (१) स्वादिष्ट यानी जायकेदार (२) पाचन करनेवाला और (३) भूख बढ़ानेवाला। हर्ष है कि इस चूर्णमें ये तीनों गुण भरपूर हैं। बहुतसे लोगोंको रोज़ चूरन खानेकी आदत होती है उनके लिये भी यह बड़े कामकी चीज है। इसकी खुराक १॥ माशेकी है, परन्तु जायकेदार होनेसे अगर थोड़ा ज्यादा भी खा लिया जावे तो गर्मी वगैरह कोई हानि नहीं करता है। क्योंकि चूर्ण होनेपर भी हमने इसमें किसी तीक्ष्ण चीजका प्रयोग नहीं किया है। सब दवाइयां मादिल गुणवाली हैं, इसलिये बीमार आदमी भी खुशीसे खा सकते हैं। पवित्र औषधियोंके सम्मेलनके कारण सभी सम्प्रदायवाले बेखटके खा सकते हैं। हम बहुत बढ़कर बात नहीं कहना चाहते हैं। इसमें स्वादिष्ट, खाना जल्द हजम करना, भूख बढ़ाना तीन विशेष गुण हैं, उनके लिये हम दावेके साथ कहते हैं कि इन बातोंमें आपको कभी धोखा नहीं होगा तिसपर भी—

आपके विश्वासके लिये—

हमने इसके एक २ तोलेके नमूनेके पैकेट बनाकर रक्खे हैं। यदि आप इस चूर्णकी परीक्षा करना और इससे लाभ उठाना चाहते हैं तो एक कार्ड भेजकर बिना डांक खर्चके एक पैकेट मंगाकर परीक्षा कर लीजिये, फिर आपका मन भरे तो पूरी शीशी मंगाकर लाभ उठाइये। बस इस से अधिक हम और कुछ भी नहीं कह सकते हैं। फी शीशी चार औंस (करीब आध पाव) वाली की कीमत १) डांक खर्च ।), तीन शीशी २॥॰ डाक खर्च ।॰) आना।

मिलने का पताः—

चन्द्रसेन जैन वैद्य,

चन्द्राश्रम, इटावह यू. पी.।

[इस अङ्कके रवाना होनेकी तारीख—२८-९-१७ ई०]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमारे छपाये हुए नये ग्रन्थ।

वृन्दावन कृत चौवीसी पाठ।

यह ग्रन्थ बम्बईके सुन्दर टाइपमें अच्छे कागजों पर फिरसे छपाया गया है। छपा भी शुद्धतापूर्वक है। जिन्हें और कहींकी छपाई पसन्द नहीं उन्हें अब इस बम्बईके छपे हुए विधानको या पूजा पाठको अवश्य मँगा लेना चाहिए। मूल्य १≈)

जैनपदसंग्रह।

कविवर दौलतराम कृत पहला भाग और भागचन्दजी कृत दूसरा भाग पद-संग्रह फिरसे छपाये गये हैं। बहुत दिनोंसे ये मिलते नहीं थे। मूल्य पहले भागका ।≈) दूसरेका ।)।

बुधजन सतसई।

अर्थात् बुधजनजीके उपदेश, नीति, सुभाषित आदि सम्बन्धी ७०० दोहे। यह पुस्तक दुबारा छपाई गई है। मूल्य छह आने।

जैनबालबोधकके दोनों भाग।

श्रीयुत पं० पन्नालालजीके ये दोनों भाग जैनपाठशालाओंमें बहुत ही प्रचलित रहे हैं। बहुत दिनोंसे समाप्त हो गये थे, अब फिरसे छपाये गये हैं। पहले भागसे असंयुक्त और संयुक्त अक्षरोंके शब्दोंका शुद्ध शुद्ध लिखना पढ़ना अच्छी तरह आ जाता है। दूसरे भागमें धार्मिक कथाओंके और धर्मतत्त्वोंके अच्छे अच्छे पाठ हैं। मूल्य पहले भागका ।) और दूसरे भागका ।।)।

दर्शनसार।

आचार्य देवसेनसूरिका यह ऐतिहासिक ग्रन्थ मूल, संस्कृतच्छाया, हिन्दी अर्थ और विस्तृत विवेचन सहित हाल ही छपकर हुआ तैयार है। इसका सम्पादन जैनहितैषीके सम्पादकने किया है। इसमें बौद्ध, आजीवक, श्वेताम्बर, काष्ठासंघ, द्राविडसंघ, यापनीयसंघ, माथुरसंघ आदि अनेक धर्मसम्प्रदायोंका इतिहास और उनकी मानतायें बतलाई हैं। विवेचन बहुत ही परिश्रमसे लिखा गया है। प्रत्येक इतिहासप्रेमीको यह पुस्तक मँगाकर पढ़ना चाहिए। मूल्य ।)

रत्नकरण्डश्रावकाचार पद्यानुवाद।

पं० गिरिधर शर्माकृत। खड़ी बोलीके सुन्दर पद्योंमें रत्नकरण्डका सुन्दर सरल अनुवाद। जैनपाठशालाओंमें पढ़ाये जाने योग्य। मूल्य =)

माणिकचन्द ग्रन्थमालाके ग्रन्थ।

सब ग्रन्थ ठीक लागतके मूल्य पर बेचे जाते हैं। सबसे सस्ते हैं। प्रत्येक मंदिरमें इनकी एक एक प्रति अवश्य रखना चाहिए और संस्कृतके पण्डितोंको वितरण करना चाहिए:—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१ सागारधर्मामृत सटीक आशाधर कृत ।≈)
२ लघीयस्त्रयादिसंग्रह अकलंकभट्टकृत ।=)
३ पार्श्वनाथचरित वादिराजसूरि कृत ॥)
४ विक्रान्त कौरवीय नाटक हस्तिमल्ल कृत ।=)
५ मैथिलीपरिणय नाटक ,, ।)
६ प्रद्युम्नचरित महासेनाचार्यकृत ॥)
७ आराधनासार सटीक देवसेनाचार्य कृत ।)॥
८ जिनदत्तचरित्र, गुणभद्र कृत ।)॥
९ चारित्रसार चामुण्डराय कृत ।=)
१० प्रमाणनिर्णय वादिराजसूरि कृत ।–)

बच्चोंके सुधारनेके उपाय ।

इसमें बच्चोंकी आदतें सुधारने, उन्हें सदाचारी और विनयशील बनाने, बुरेसे बुरे स्वभावके लड़कोंको अच्छे बनाने, उपद्रवियों और चिड़चिड़ोंको शान्त शिष्ट बनानेके अमोघ उपाय बतलाये गये हैं । प्रत्येक माता पिताको इसे पढ़ डालना चाहिए । इसके अनुसार चलनेसे उनका घर स्वर्ग बन जायगा । मू० ॥)

कोलम्बस ।

अमेरिका खण्डका पता लगानेवाले असम साहसी कर्मवीर कोलम्बसका आश्चर्यजनक और शिक्षाप्रद जीवनचरित । अभी हाल ही छपकर तैयार हुआ है । नवयुवाओंको अवश्य पढ़ना चाहिए । मूल्य ।॥)

मानवजीवन ।

सदाचार और चरित्रसम्बन्धी अनेक अँगरेजी, मराठी, गुजराती, बंगला पुस्तकोंके आधारसे यह ग्रन्थ रचा गया है । सदाचारकी शिक्षा देनेके लिए और सच्चे मनुष्योंकी सृष्टि करनेके लिए यह ग्रन्थ बहुत अच्छा है । इस ग्रन्थके विना कोई घर, कोई पुस्तकालय, और कोई मन्दिर न रहना चाहिए । भाषा बहुत ही सरल और स्पष्ट है । मूल्य १।=) कपड़ेकी जिल्दका १॥)।

उस पार । प्रसिद्ध नाटककार द्विजेन्द्रलालरायके एक सामाजिक नाटकका अनुवाद । स्टेज पर खेलनेलायक अपूर्व नाटक है । हिन्दीमें इसकी जोड़का एक भी नाटक नहीं है । प्रारंभमें एक विस्तृत भूमिकाके द्वारा इस नाटकके प्रत्येक पात्रके चरित्रकी खूबियां दिखलाई गई हैं । मूल्य सवा रुपया ।

ग्रन्थपरीक्षा प्रथम भाग और द्वितीय भाग । लेखक, श्रीयुत बाबू जुगल किशोरजी मुख्तार । पहले भागमें जिनसेनत्रिवर्णाचार, उमास्वामीश्रावकाचार और कुन्दकुन्दश्रावकाचार इन तीन ग्रन्थोंकी और दूसरे भागमें भद्रबाहुसंहिताकी समालोचना प्रकाशित की गई है । ये सब लेख जैनहितैषीमें निकल चुके हैं । इनका खूब प्रचार होना चाहिए । मूल्य लागत मात्र रक्खा गया है । पहले भागका ।≈ और दूसरे भागका ।)

मोक्षमार्गकी कहानियां । रत्नकरण्डश्रावकाचारमें जिन जिन स्त्री पुरुषोंके उदाहरण आये हैं, उन सबकी २३ कथाओंका संग्रह । यह हाल ही छपी है । मूल्य सात आने ।

जैननित्यपाठसंग्रह । इसमें नित्यके उपयोगमें होनेवाले ३३ भाषाके पाठोंका और तत्त्वार्थ तथा भक्तामर, इन दो संस्कृत पाठोंका संग्रह है । कागज अच्छा, छपाई अच्छी । पहले जो संग्रह बम्बईमें छपा था, उससे इसमें कई पाठ अधिक हैं । मूल्य बारह आने ।

मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, गिरगांव–बम्बई.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org